पण्डित दौलतराम जी कृत

छहढाला

[बालबोध टीका]

टीकाकर्त्री

गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माता जी

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

अपनी बात

‘धम्मो वत्थु सहावो’—धर्म वस्तु का स्वभाव है और दिगम्बरत्व मनुष्य का निज रूप है, उसका प्रकृत स्वभाव है । इस दृष्टि से मनुष्य के लिए दिगम्बरत्व परमोपादेय धर्म है । धर्म और दिगम्बरत्व में कुछ भेद नहीं रहता ।

जीवात्मा अपने धर्म को गँवाये हुए है । लौकिक दृष्टि से देखिए, चाहे आध्यात्मिक से, जीवात्मा भव-भ्रमण के चक्कर में पड़कर अपने निज स्वभाव से हाथ धोये बैठा है । लोक में वह नंगा आया है फिर भी वह समाज-मर्यादा के कृत्रिम भय के कारण वह अपने निज रूप को नहीं जान पाता है ।

संसार की माया-ममता में पड़कर आत्मानुभव से वंचित रहा है । इसका मुख्य कारण राग-द्वेषजनित परिणति है । राग-द्वेष और मोह के कारण यह जीव नरक, तिर्यंच, देव एवं मनुष्य आदि चारों गतियों में ८४ लाख योनियों में भ्रमण कर नाना प्रकार के कष्टों को पा रहा है ।

जीवात्मा को आत्मा स्वातन्त्र्यता प्राप्त करने के लिये पर-सम्बन्ध को बिल्कुल छोड़ना होगा । भारतीय संस्कृति में त्याग, इन्द्रिय-विजय, अनुशासन और प्रेम की अविरल धारा बह रही है । भोग से सुख नहीं मिला, तब त्याग आया । भारतीय संस्कृति के अणु-अणु में त्याग की गूँज अनुजीवित है । जो व्यक्ति इसे विस्मृत कर देता है वह मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करता है । वही जीव संसार में भ्रमण करता रहता है ।

हम सब अज्ञानता के कारण संसार में भ्रमण कर रहे हैं । उससे छूटने का उपाय छहढ़ाला में पं० दौलतरामजी ने आचार्यों के शब्दों को बड़ी ही सरलता एवं सरस रूप में प्रस्तुत किया है ।

● **आ० स्याद्वादमती**

।। श्री वीतरागाय नमः ।।

प्रथम ढाल

मंगलाचरण

(सोरठा)

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं ।।१।।

शब्दार्थ—तीन भुवन = तीन लोक । वीतराग = राग-द्वेष रहित । सार = श्रेष्ठ । शिवस्वरूप = आनन्दस्वरूप । शिवकार = मोह प्राप्त करने वाला । त्रियोग = मन, वचन, काय । सम्हारिकैं = स्थिर हो करके । नमहुँ = नमस्कार करता हूँ

अर्थ—तीन लोक में राग-द्वेषादि से रहित विशिष्ट ज्ञान, केवलज्ञान ही श्रेष्ठ है, आनन्दस्वरूप मुक्ति देने वाला उत्तम रत्न है । मैं (दौलतराम) उस केवलज्ञान के लिए मन, वचन, काय से एकतापूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

प्रश्न १—मंगलाचरण में किसे नमस्कार किया है ?

उत्तर—मंगलाचरण में राग-द्वेष रहित ज्ञान केवलज्ञान को नमस्कार किया है ।

प्रश्न २—विज्ञान का अर्थ क्या है ?

उत्तर—वि याने विशिष्ट । ज्ञान याने जानना । जो ज्ञान सब पदार्थों को विशेषरूप से एकसाथ जानता है वह विशिष्ट ज्ञान याने केवलज्ञान है ।

प्रश्न ३—आधुनिक विज्ञान को भी तो विज्ञान कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञान सदैव स्वपरोपकारी होता है । आज का विज्ञान अशांति का कारण बन चुका है । सच्चा ज्ञान शान्ति का बीज है । ज्ञान रक्षक होता है, भक्षक नहीं । आज का विज्ञान विशिष्टता से दूर हो मानव को अशान्ति की ओर ले जा रहा है । इसलिए नाम से विज्ञान कह सकते हैं, पर वीतराग विज्ञान सच्चा केवलज्ञान ही है ।

प्रश्न ४—मंगल का अर्थ क्या है ?

उत्तर—मंग = सुख । ल = लाति । ददाति = जो सुख को देवे उसे मंगल कहते हैं । अथवा—मम् = पापं । गल = गालयतीति । जो पाप का नाश करे उसे मंगल कहते हैं ।

प्रश्न ५—मंगलाचरण क्यों किया जाता है ?

उत्तर—(१) निर्विघ्न समाप्ति (२) शिष्टाचार पालन
(३) नास्तिकता का परिहार (४) पुण्य की प्राप्ति

इन कारणों से मंगलाचरण किया जाता है ।

प्रश्न ६—मंगलाचरण के लाभ बताइये ?

उत्तर—कार्य के आदि में मंगल करने से— शिष्य पारंगत होता है ।
मध्य में मंगल करने से—प्रारंभ किया कार्य निर्विघ्न पूर्ण होता है ।
अन्त में मंगल करने से—विद्या एवं विद्या के फल की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न ७—तीन लोक कौन से हैं ?

उत्तर—(१) ऊर्ध्व लोक, (२) मध्य लोक, (३) अधोलोक ।

प्रश्न ८—तीन लोकों में कौन जीव कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—(१) ऊर्ध्व लोक में —कल्पवासी एवं कल्पातीत देवों का तथा सिद्धों का निवास है ।
मध्य लोक में —मनुष्य, पशु, पक्षी आदि का निवास है ।
अधोलोक में —असुरकुमार, राक्षसादि भवनवासी-व्यन्तर देवों एवं नारकियों का निवास है तथा एकेन्द्रिय जीव सर्वत्र व्याप्त हैं ।

प्रश्न ९—लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें जीवादि छहों द्रव्य पाये जाते हैं, उसे लोक या लोकाकाश कहते हैं ।

जीवों की चाह

(चौपाई छन्द—१४ मात्रा)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त ।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ।।२।।

शब्दार्थ—अनन्त = जिसका अन्त न हो । **चाहैं** = चाहते हैं । दुःखतैं = दुःखों से । भयवन्त = डरते हैं । सीख = शिक्षा । करुणाधार = दया करके ।

अर्थ—तीन लोक में अनन्त जीव हैं, वे सब सुख चाहते हैं और दुःखों से डरते हैं इसीलिए दुःख को दूर करने वाली और सुख देने वाली शिक्षा गुरु (आचार्य) दयापूर्वक देते हैं ।

प्रश्न १—तीन भुवन में जीव कितने हैं ? वे क्या चाहते हैं ?

उत्तर—तीन भुवन में अनन्त जीव हैं । वे सुख चाहते हैं ।

प्रश्न २—किससे डरते हैं ?

उत्तर—दुःखों से डरते हैं ।

प्रश्न ३—गुरु कैसी शिक्षा देते हैं और कैसे देते हैं ?

उत्तर—गुरु दुःख को दूर करने वाली और सुख देनेवाली शिक्षा देते हैं । गुरु (दिगम्बर) दया करके शिक्षा देते हैं ।

चेतावनी एवं संसार-भ्रमण का कारण

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण ।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ।।३।।

शब्दार्थ—ताहि = उस गुरु-शिक्षा को । भवि = भव्य जीव । स्थिर आन = स्थिर होकर । चाहो = चाहते हो । मोह = मोहनीय कर्म । महामद = तेज शराब । भरमत = भटकना । वादि = व्यर्थ ।

अर्थ—हे भव्यात्माओ ! यदि आप अपना कल्याण चाहते हो तो गुरुजनों की उस भला करने वाली शिक्षा को मन लगाकर सुनो । यह जीव अनादिकाल से मोहरूपी तेज शराब को पीकर, अपने आत्मस्वरूप को भूल कर बिना प्रयोजन भ्रमण कर रहा है ।

प्रश्न १—आप क्या चाहते हैं ?

उत्तर—हम कल्याण चाहते हैं ।

प्रश्न २—कल्याण प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिये ?

उत्तर—सच्चे गुरुओं की शिक्षा को ध्यान से प्रीतिपूर्वक सुनना चाहिये ।

प्रश्न ३—भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्रकट करने की योग्यता हो, उसे भव्य कहते हैं ।

प्रश्न ४—मोह किसे कहते हैं ?

उत्तर– (१) मोहनीय कर्म जो स्वपर के विवेक को भुला देता है ।

अथवा

(२) सांसारिक वस्तुओं में प्रेम करना या

(३) अपने-आपको भूल जाना ।

प्रश्न ५—महामद कौन-सा है ?

उत्तर—मोह ।

प्रश्न ६—क्यों है ?

उत्तर—शराब पीनेवाले का नशा २-४ घण्टे में उतर जाता है परन्तु मोहरूपी महाशराब का नशा भव-भवान्तर तक नहीं उतरता है । शराब के नशे में मस्त जीव पत्नी को माता और माता को पत्नी कहता है । मोह के नशे में मस्त जीव अपने से भिन्न शरीर, माता, पिता, पुत्रादि एवं धन-दौलत, घर, दुकानादि को अपना मानकर चारों गतियों में भ्रमण करता है ।

प्रमाणता और निगोद के दुःख

तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनन्त निगोद मंझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार ।।४।।

शब्दार्थ—तास भ्रमण = भटकने को । बहु कथा = बड़ी कहानी । कछु = कुछ । कहूँ = कहता हूँ । यथा = जैसी । निगोद मंझार = निगोद में । तन = शरीर । धार = धारण करके । बीत्यो = बीता है ।

अर्थ—इस जीव के संसार-भ्रमण की कहानी बहुत बड़ी है । परन्तु जैसी पूर्वाचार्यों ने कही है वैसी मैं भी कहता हूँ । इस जीव ने अनन्त काल निगोद में बिताया है ।

प्रश्न १—निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर—निगोद तिर्यंचगति के एकेन्द्रिय जीवों की एक पर्याय विशेष है जिसमें जीव की आयु बहुत थोड़ी होती है । एक श्वास में अठारह बार जन्मता है और अठारह बार मरण करता है ।

प्रश्न २—निगोद के कितने भेद हैं ?

उत्तर—निगोद के दो भेद हैं—(१) नित्य निगोद, (२) इतर निगोद।

प्रश्न—नित्य निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर—वह जीवराशि जहाँ के जीवों ने अनादिकाल से अब तक त्रस पर्याय नहीं पाई, उन्हें निगोद कहते हैं। (भविष्य में त्रस पर्याय पा सकते हैं।)

प्रश्न ४—नित्य निगोद से जीव किस परिणाम से निकलते हैं ?

उत्तर—नित्य निगोद से जीव लेश्या की मन्दता से निकलते हैं।

प्रश्न ५—इतर निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो निगोद से निकलकर अन्य पर्याय पा पुनः निगोद में उत्पन्न हो वह इतर निगोद है।

प्रश्न ६—निगोदिया जीव कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—निगोदिया जीवों के रहने के स्थान भी दो हैं—(१) सातवें नरक के नीचे एक राजू क्षेत्र कलकल पृथ्वी में। (२) सर्वलोक।

प्रश्न ७—एकेन्द्री जीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर— (१) पृथ्वीकायिक (२) जलकायिक
(३) अग्निकायिक (४) वायुकायिक
(५) वनस्पतिकायिक—ये एकेन्द्री के पाँच भेद हैं।

निगोद के दुःख और वहाँ से निकलने का क्रम

एक श्वास में अठदश बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ।।५।।

शब्दार्थ—अठदश = अठारह। जन्म्यो = पैदा हुआ। मर्‌यो = मरा। भर्‌यो = सहन किया। निकसि = निकलकर। पावक = अग्नि।

अर्थ—इस जीव ने निगोद के भीतर एक श्वास में अठारह बार जन्म लिया और मरण किया तथा अनेक दुःखों को सहन किया। वहाँ से निकलकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति जीवों में उत्पन्न हुआ।

प्रश्न १—निगोदिया जीवों की कौन सी गति एवं काय होती है ?

उत्तर—निगोदिया जीवों की तिर्यंच गति होती है। तथा एकेन्द्रिय में साधारण वनस्पतिकाय होती है।

प्रश्न २—निगोदिया के दु:ख कौन से हैं ?

उत्तर—निगोदिया जीव जन्म-मरण के दु:खों से अत्यन्त पीड़ित हैं, वे एक श्वास में अठारह बार जन्म लेते हैं तथा अठारह बार ही मरते हैं।

प्रश्न ३—निगोद से निकलने का क्रम क्या है ?

उत्तर—निगोद से निकला जीव प्रथम पंच स्थावरों पृथ्वी आदि में उत्पन्न होता है।

प्रश्न ४—स्थावर जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्थावर नामकर्म के उदय से पृथ्वी जलादि जिनका शरीर हो उन्हें स्थावर जीव कहते हैं। ये एकेन्द्रिय ही होते हैं।

त्रस पर्याय की दुर्लभता एवं तिर्यंचगति के दु:ख

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रस त्रणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‌यो सही बहु पीर ।।६।।

शब्दार्थ—दुर्लभ = कठिन। चिन्तामणी = एक रत्न। ज्यों = जैसे। त्यों = तैसे। पर्याय = अवस्था (परिणमन)। त्रस तणी = त्रस सम्बन्धी। पिपील = चींटी। अलि = भौंरा। बहुपीर = बहुत दु:ख।

अर्थ—जैसे चिन्तामणि रत्न बहुत कठिनाई से मिलता है वैसे ही त्रस पर्याय भी बड़ी कठिनाई से मिलती है। इस जीव ने त्रस पर्याय में लट, चींटी, भौंरा आदि के शरीर बार-बार धारण कर मरण किया और बहुत दु:ख उठाया।

प्रश्न १—त्रस जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्रस नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की अवस्था विशेष को त्रस कहते हैं।

प्रश्न २—चिन्तामणि रत्न किसे कहते हैं ?

उत्तर—मनवांछित फल देनेवाला रत्न ।

प्रश्न ३—लट, चींटी, भ्रमर जीवों के कितनी इन्द्रियाँ होती हैं ?

उत्तर—लट के दो इन्द्रियाँ = स्पर्शन और रसना ।
चींटी के तीन इन्द्रियाँ = स्पर्शन, रसना और घ्राण ।
भ्रमर के चार इन्द्रियाँ = स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ।

तिर्यंचगति में असैनी और सैनी के दुःख

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो ।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ।।७।।

शब्दार्थ—कबहूँ = कभी । पंचेन्द्रिय = जिनके पाँचों इन्द्रियाँ हों । पशु = तिर्यंच । भयो = हुआ । मन बिन = मन के बिना । निपट = बिलकुल । अज्ञानी = मूर्ख । थयो = हुआ । क्रूर = दुष्ट । ह्वै = होकर । निबल = कमजोर । भूर = बहुत । हति = मारकर ।

अर्थ—यह जीव जब कभी असैनी पंचेन्द्रिय पशु हुआ तो मन न होने से अत्यंत अज्ञानी रहा और यदि कभी सैनी भी हुआ तो सिंह-जैसे दुष्ट होकर अपने से कमजोर पशुओं को मारकर खाता रहा जिससे घोर पाप बन्ध किया ।

प्रश्न १—गति किसे कहते हैं, ये कितनी होती हैं ?

उत्तर—गति नामकर्म के उदय होने से प्राप्त जीव की अवस्था विशेष को गति कहते हैं । गति ४ होती है—(१) नरक गति, (२) तिर्यंच गति, (३) मनुष्य गति, (४) देव गति ।

प्रश्न २—इन्द्रिय किसे कहते हैं ? ये कितनी होती हैं ?

उत्तर—जिन चिह्नों से जीव की पहचान होती है उसे इन्द्रिय कहते हैं । ये ५ होती हैं—(१) स्पर्शन, (२) रसना, (३) घ्राण, (४) चक्षु, (५) कर्ण ।

प्रश्न ३—सैनी किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन सहित जीव को सैनी कहते हैं । अथवा जो हित का

उपदेश सुनकर हित को ग्रहण करता है तथा अहित का त्याग करता है उसे सैनी कहते हैं ।

प्रश्न ४—सिंह के कितनी इन्द्रियाँ हैं ? तथा आपके कितनी इन्द्रियाँ हैं ?

उत्तर—पाँच-पाँच ।

प्रश्न ५—सिंह और आप सैनी हैं या असैनी ?

उत्तर—सिंह भी सैनी है । हम भी सैनी हैं ।

प्रश्न ६—यदि जीव असैनी पंचेन्द्रिय हुआ तो ?

उत्तर—'मन बिन निपट अज्ञानी थयो ।' मन के बिना अज्ञानी रहा ।

प्रश्न ७—सैनी हुआ तो क्या किया ?

उत्तर—सिंहादिक क्रूर जीव (पशु) बनकर कमजोर प्राणियों को मार-मारकर खाया ।

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन ।
छेदन भेदन भूख पियास, भार वहन हिम आतप त्रास ।।८।।

शब्दार्थ—बलहीन = कमजोर । भयो = हुआ । सबलनि करि = बलवानों के द्वारा । अतिदीन = असमर्थ । छेदन = छेदा जाना । भेदन = भेदा जाना । वहन = ढोना । हिम = ठण्डा । आतप = गर्मी । त्रास = दु:ख ।

अर्थ—जब यह जीव स्वयं कमजोर हुआ तो अपने से ताकतवर जीवों के द्वारा मारकर खाया गया । नाक-कान छिदना, अरइ चुभनों, भूखे रहना, ठण्डी-गर्मी आदि के दु:ख सहे ।

प्रश्न १—जब यह जीव कमजोर हुआ तो क्या हुआ ?

उत्तर—जब यह जीव कमजोर हुआ तो सबलों (बलवानों) के द्वारा खाया गया ।

प्रश्न २—तिर्यंच बनकर और क्या दु:ख पाया ?

उत्तर—छेदन, भेदन, भूख, प्यास, भार ढोना, शीतोष्ण आदि अनेक दु:ख पाये ।

वध बन्धन आदिक दु:ख घने, कोटि जीभतैं जात न भनैं ।
अतिसंक्लेश भाव तैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‌यो ।।९।।

शब्दार्थ—वध = मारा जाना । बन्धन = बाँधा जाना । घने = बहुत । कोटि = करोड़ों । जीभतैं = जीभों से । भने = कहे । न जात = नहीं जाते । अतिसंक्लेश = अत्यन्त खोटे । भावतैं = परिणामों से । श्वभ्रसागर = नरकरूपी सागर । पर्यो = जा पड़ा ।

अर्थ—इस जीव ने मारा जाना, बाँधा जाना आदि अनेक दुःख सहे जो करोड़ों जीभों से भी नहीं कहे जा सकते । अन्त में जब अत्यन्त खोटे परिणामों से मरा तो भयानक नर्करूपी समुद्र में जा पहुँचा ।

प्रश्न १—तिर्यंच गति के दुःखों का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।

उत्तर—(१) तिर्यंच गति में यदि निगोद में हुआ तो एक श्वास में अठारह बार जन्मा, अठारह बार मरा, घोर दुःख सहन किया ।

(२) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय में जन्म-मरण

(३) के दुःखों को सहन किया ।

सहन किया ।

(४) पंचेन्द्रिय असैनी हुआ तो मन के बिना अज्ञानता का दुःख हुआ ।

(५) सिंहादिक बलवान एवं क्रूर जीवों में उत्पन्न हुआ तो निर्बलों को मार-मारकर खाया ।

(६) यदि स्वयं निर्बल हुआ तो बलवानों के द्वारा खाया गया ।

(७) कोई छेदता है, कोई भेदता है, कोई पत्थर मारता है, भूख, प्यास, शक्ति से अधिक बोझा लादता है, शीतोष्ण वध, बन्धन आदि इतने महादुःख तिर्यंच गति में हैं कि करोड़ों जिह्वा से भी उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

प्रश्न २—नरक गति में उत्पन्न होने का कारण बताइये ?

उत्तर—"अतिसंक्लेश भाव तैं मर्यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्यो" अत्यन्त संक्लेश परिणामों से मरण करने पर नरक गति की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न ३—नरक किसे कहते हैं ? वे कहाँ हैं ?

उत्तर—पाप कर्म के उदय से जिसमें उत्पन्न होते ही जीव असह्य और अपरिमित वेदना पाने लगते हैं। दूसरे नारकियों के द्वारा सताये जाने आदि से दुःख का अनुभव करते हैं तथा जहाँ विद्वेषपूर्ण जीवन बीतता है, वह स्थान 'नरक' कहा जाता है । सभी नरकों का स्थान अधोलोक में है ।

प्रश्न ४—नरक कितने हैं ? नाम बताइए ।

उत्तर—नरक सात हैं—(१) घम्मा, (२) वंशा, (३) मेघा, (४) अंजना, (५) अरिष्टा, (६) मघवी, (७) माधवी ।

प्रश्न ५—नरक की भूमियों के नाम बताइए ?

उत्तर—(१) रत्नप्रभा, (२) शर्कराप्रभा, (३) बालुकाप्रभा, (४) पंकप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तमःप्रभा, (७) महातमःप्रभा ।

प्रश्न ६—नरक गति किसे कहते हैं ?

उत्तर—नरक गति नामकर्म के उदय से नरक में जन्म लेना ।

नरक गति के दुःख

तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसें नहिं तिसो ।
तहाँ राध-शोणितवाहिनी, कृमिकुलकलित देहदाहिनी ।।१०।।

शब्दार्थ—तहाँ = वहाँ (नरक में) । परसत = छूने से । इसो = इतना । सहस = हजार । डसें = काटने से । तिसो = उतना । राध = पीव । शोणित = खून । वाहनी = नदी । कृमि = कीड़ा । कुल = समूह । कलित = सहित । देह = शरीर । दाहनी = जलाने वाली ।

अर्थ—उन नरकों की पृथ्वी का स्पर्श करने से जितना दुःख होता है, उतना हजार बिच्छुओं के एकसाथ काटने पर भी नहीं होता है । वहाँ नरक में पीव और खून बहाने वाली, कीड़ों के समूह से भरी हुई और देह को जलाने वाली वैतरणी नदी बहती है ।

प्रश्न १—नरक भूमियों का स्पर्श कैसा है ?

उत्तर—नरकों की भूमियों का स्पर्श करने मात्र से इतना दुःख होता है कि यहाँ पर यदि एकसाथ हजार बिच्छू भी डंक मारें तो उतनी तकलीफ नहीं हो ।

प्रश्न २—नरकों की नदियों का जल कैसा है ?

उत्तर—नरकों की नदियाँ खून, पीपरूपी जल से भरी हैं। करोड़ों कीड़ों के समूह से व्याप्त हैं तथा वहाँ का जल शरीर में तीव्र दाह पैदा करता है।

सेमरतरु जुत दल असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।११।।

शब्दार्थ—सेमर तरु = सेमर के वृक्ष। जुत = सहित। दल = पत्ता। असिपत्र = तलवार की धार के समान पत्ता। असि = तलवार। विदार = चीर देते हैं। मेरु = मेरु पर्वत। समान = बराबर। लोह गलि जाय = लोह के ढेर पिघल जाय। शीत = ठण्ड। उष्णता = गर्मी। थाय = होती है।

अर्थ—उस नरक में तलवार की धार के समान पत्तेवाले सेमर के वृक्ष हैं, जो तलवार के सदृश ही शरीर को चीर देते हैं। वहाँ ठण्ड और गर्मी इतनी होती है कि मेरु पर्वत के बराबर लोहे का पिण्ड भी गल जाता है।

प्रश्न १—नरकों के वृक्ष कैसे होते हैं?

उत्तर—नरकों के वृक्ष तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों वाले होते हैं।

प्रश्न २—वहाँ के वृक्ष का नाम बताइए?

उत्तर—सेमर वृक्ष।

प्रश्न ३—मेरु कहाँ है? कितना बड़ा है?

उत्तर—जम्बूद्वीप के मध्य विदेह क्षेत्र में स्थित सुदर्शन मेरु पर्वत है। वह एक हजार योजन जमीन में है। ९९ हजार योजन ऊँचा है। दस हजार योजन मोटा है। चालीस योजन की इसकी चोटी है।

प्रश्न ४—नरकों में उष्णता का वर्णन करो?

उत्तर—'मेरु समान लोह गलि जाय' जिस प्रकार गर्मी में मोम पिघल जाता है उसी प्रकार सुमेरु के बराबर लोह का पिण्ड भी यदि गर्म बिलों में फेंका जाय तो वह भी गल जाय—ऐसी तीव्र उष्णता वहाँ है।

प्रश्न ५—नरकों में शीत का वर्णन करो?

उत्तर—'मेरु समान लोह गलि जाय' जिस प्रकार शीत ऋतु या वर्षा ऋतु में नमक गल जाता है, पानी हो जाता है, उसी प्रकार सुमेरु समान

लोहे-सा गोला फेंका जाय तो वह भी गल सकता है। इतनी शीत वहाँ ५वें, ६वें, ७वें नरक में है।

प्रश्न ६—उष्ण नरक कौन से हैं ?

उत्तर—प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम भूमि का ऊपरी भाग ये उष्ण नरक हैं। यहाँ गर्मी अधिक है।

प्रश्न ७—शीत नरक कौन से हैं ?

उत्तर—पाँचवीं भूमि का निचला हिस्सा (नीचे का तिहाई भाग) और छठवीं, सातवीं भूमि अति ठण्डी होती है। अतः ये शीत नरक कहलाते हैं।

प्रश्न ८—नरकों में तिर्यञ्च जीव कृमि, वृक्षादि तो उत्पन्न होते नहीं फिर वहाँ वृक्ष, नदियाँ आदि कैसे पाये जाते हैं ?

उत्तर—नारकियों के अपृथक् विक्रिया होती है। नारकीय स्वयं इस प्रकार के नदी, कृमि, वृक्ष आदि बन जाते हैं और एक-दूसरे को पीड़ा देते हैं।

तिल-तिल करें देह के खण्ड, असुर भिड़ावें दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धुनीरतें प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ।।१२।।

शब्दार्थ—तिल-तिल = तिल के दाने के बराबर। खण्ड = टुकड़ा। असुर = भवनवासी देव। भिड़ावे = लड़ाते हैं। दुष्ट = क्रूर। चण्ड = निर्दय। सिन्धु = समुद्र। नीरतें = पानी से। पण = परन्तु। लहाय = मिले।

अर्थ—उन नरकों में नारकी जीव एक-दूसरे के शरीर के तिल के बराबर टुकड़े कर डालते हैं और अत्यन्त क्रूर, निर्दयी असुरकुमार जाति के देव उन्हें आपस में भिड़ा देते हैं। नरकों में प्यास इतनी लगती है कि समुद्र का पूरा पानी पीवें तो भी प्यास नहीं बुझे, किन्तु एक बूँद भी पानी वहाँ नहीं मिलता है।

प्रश्न १—नारकी आपस में कैसे लड़ते हैं तथा असुरकुमार देव क्या करते हैं ?

उत्तर—नारकी आपस में एक-दूसरे को मारते-काटते रहते हैं। तिल के समान शरीर के टुकड़े कर देते हैं और लड़ते हुओं के बीच में असुरकुमार देव एक-दूसरे को झूठा-सच्चा भिड़ाकर आनन्द लेते हैं और सबको दुःखी करते हैं।

प्रश्न २—इतने टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी क्या नारकी मरते नहीं हैं ?

उत्तर—नारकियों का वैक्रियिक शरीर होता है। जिस प्रकार पारा के टुकड़े-टुकड़े होने पर भी फिर मिल जाता है, उसी प्रकार नारकियों का शरीर टुकड़े-टुकड़े होने पर भी फिर मिल जाता है। उनकी अकाल मृत्यु कभी नहीं होती है। कितनी भी मार-काट हो जाय, कोई भी जीव वहाँ से अकाल में मर नहीं सकता।

प्रश्न ३—असुरकुमार देव कौन होते हैं ?

उत्तर—भवनवासी देवों में एक असुरकुमार देव होते हैं। उनका काम ही नरकों में जाकर लड़ाई करवाना है।

प्रश्न ४—नरकों में प्यास कैसी लगती है ?

उत्तर—नरकों में इतनी प्यास लगती है कि सारा समुद्र का पानी पी जाय तो भी प्यास नहीं बुझती।

प्रश्न ५—पीने को पानी मिलता है या नहीं ?

उत्तर—वहाँ एक बूँद भी पानी पीने को नहीं मिलता।

नरक की भूख और मनुष्य गति में उत्पत्ति का कारण

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहुसागरलों सहै, करम जोगतें नरगति लहै ॥१३॥

शब्दार्थ—नाज = अन्न। कणा = दाना। लहाय = मिलता है।

अर्थ—उन नरकों में भूख इतनी अधिक लगती है कि तीनों लोकों का अनाज भी खा लिया जावे तो भी भूख नहीं मिट सकती, परन्तु वहाँ पर एक दाना भी खाने को नहीं मिलता है। इस प्रकार के दुःख बहुत सागरों तक सह कर जीव फिर किसी शुभ कर्म के उदय से मनुष्य गति पाता है।

प्रश्न १—तीन लोक कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) ऊर्ध्वलोक, (२) मध्य-लोक, (३) अधोलोक।

प्रश्न २—नरकों में भूख कितनी लगती है ?

उत्तर—नरकों में इतनी तेज भूख लगती है कि तीन लोक का अनाज खा लें।

प्रश्न ३—खाने को क्या मिलता है ?

उत्तर—एक कण भी अनाज वहाँ खाने को नहीं मिलता है ।

प्रश्न ४—सागर किसे कहते हैं ?

उत्तर—दो हजार कोस गहरे और दो हज़ार कोस चौड़े गोल गड्ढे में कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके, ऐसे एक से लेकर सात दिन तक के पैदा हुए उत्तम भोगभूमि के मेढे के बालों को पूर्ण भरना, उनमें से एक बाल को सौ-सौ वर्ष बाद निकालना । जितने वर्षों में वे सब बाल निकल आवें उतने काल को व्यवहार पल्य कहते हैं । व्यवहार पल्य से असंख्यात गुणा उद्धारपल्य और उद्धारपल्य से असंख्यात गुणा अद्धापल्य होता है । ऐसे १० कोड़ा कोड़ी (१० X १० करोड़) अद्धापल्यों का एक सागर होता है ।

प्रश्न ५—मनुष्य गति में उत्पत्ति का कारण क्या है ?

उत्तर—"करम जोगतें नरगति लहै" पुण्य योग से लेश्या या कषाय की मन्दता से मनुष्य गति मिलती है ।

प्रश्न ६—मनुष्य गति किसे कहते हैं ?

उत्तर—मनुष्य गति नामकर्म के उदय से मनुष्यों में जन्म लेना या पैदा होने को मनुष्य गति कहते हैं ।

प्रश्न ७—मनुष्य कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—मनुष्य मध्य लोक में रहते हैं ।

मनुष्य गति के दुःख

जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतें पाई त्रास ।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ।।१४।।

शब्दार्थ—जननी = माता । उदर = पेट । नव मास = नौ महीने । वस्यो = रहा । अंग = शरीर । सकुचतें = सिकुड़ा रहने से । त्रास = दुःख । निकसन = पैदा होते समय । घोर = भयानक । ओर = अंत ।

अर्थ—यह जीव माता के पेट में नौ माह रहा । वहाँ अंग सिकुड़ा रहने से जो दुःख उठाया तथा जन्म लेते समय जो भयानक दुःख भोगे, उनको कहते हुए अन्त नहीं आ सकता ।

प्रश्न १—यह जीव माता के पेट में कितने दिन और कैसे रहा ?

उत्तर—यह जीव माता के पेट में नौ माह तक शरीर को सिकोड़ कर रहा।

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ।।१५।।

शब्दार्थ—बालपने में = लड़कपन में। तरुण = जवान। तरुणी = स्त्री। रत = लीन। अर्धमृतक सम = आधे मरे के समान। बूढ़ापनो = बुढ़ापा। कैसे = किस प्रकार। रूप आपनो = आत्मस्वरूप। लखै = देख सकता है।

अर्थ—लड़कपन में इसने ज्ञान नहीं पाया। जवानी में स्त्री में आसक्त रहा। बुढ़ापा अर्ध मरे के समान है। फिर यह जीव अपने शरीर को कैसे पहचान सकता है।

प्रश्न १—मनुष्य जीवन की तीन अवस्थाएँ कौन-सी हैं ?

उत्तर—(१) बचपन (२) यौवन, (३) बुढ़ापा।

प्रश्न २—ज्ञान कब प्राप्त करना चाहिए ?

उत्तर—बालपन में ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

प्रश्न ३—मानव ने तीनों अवस्थाएँ कैसे खो दीं ?

उत्तर—मानव ने बचपन को खेल में, जवानी में स्त्री के साथ और बुढ़ापा आधे मरे के समान खो दिया।

अकामनिर्जरा का फल एवं देवगति के दुःख

कभी अकाम-निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो ।।१६।।

शब्दार्थ—अकाम = बिना इच्छा। निर्जरा = कर्मों का एक देश क्षय होना। भवनत्रिक = भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी ये तीन प्रकार के देव। सुरतन = देव पर्याय। सह्यो = सहन। विलाप = झूरना।

अर्थ—कभी इस जीव ने अकाम निर्जरा की तो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तीन प्रकार के देवों में पैदा हुआ परन्तु वहाँ भी विषयों की

चाहरूपी दावानल में जलता रहा और मरते समय विलाप करते हुए दुःख को सहन किया।

प्रश्न १—देवों के रहने का स्थान कहाँ है ?

उत्तर—देवों के रहने का स्थान ऊर्ध्वलोक है।

प्रश्न २—देवगति किसे कहते हैं ?

उत्तर—देवगति नामकर्म के उदय से देवों में उत्पन्न होना।

प्रश्न ३—देवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) भवनवासी, (२) व्यन्तरवासी, (३) ज्योतिषी, (४) कल्पवासी।

प्रश्न ४—भवनत्रिक किसे कहते हैं ?

उत्तर—भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों को भवनत्रिक कहते हैं।

प्रश्न ५—अकाम निर्जरा से जीव कहाँ पैदा होता है ?

उत्तर—अकाम निर्जरा का फल भवनत्रिक देवों में उत्पन्न होना है।

प्रश्न ६—अकाम निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनिश्चित भाव से कष्ट सहने पर क्षुधादि से विवश होने पर मन्दकषाय की हालत में कर्मों का फल देकर स्वयमेव झड़ जाना।

प्रश्न ७—भवनत्रिक में दुःख किस प्रकार का होता है ?

उत्तर—विषय सेवन की इच्छा से निरन्तर पीड़ित रहता है तथा मृत्यु समय सारे वैभव को देख-देखकर विलाप करता है और छूटने के दुःख से रोता है।

जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तहँते चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥१७॥

शब्दार्थ—जो = यदि। विमानवासी = वैमानिक देव। थाय = हुआ। तहँते = वहाँ से। चयकर = मर कर। (आकर) थावर = स्थावर। यों = इस प्रकार।

अर्थ—यह जीव विमानवासी देवों में भी पैदा हुआ तो वहाँ भी

सम्यग्दर्शन के बिना दु:ख उठाया और वहाँ से भी मर कर स्थावरों के शरीर को धारण किया। इस तरह यह जीव पाँच परिवर्तनों को पूरा करता है।

प्रश्न १—विमानवासी किसे कहते हैं ?

उत्तर—विमानों में रहने वाले देव विमानवासी कहलाते हैं ?

प्रश्न २—इनके कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) कल्पोपपन्न, (२) कल्पातीत।

प्रश्न ३—वैमानिक देव में यह जीव क्यों दु:खी रहा ?

उत्तर—'सम्यग्दर्शन बिन दु:ख पाय' सम्यग्दर्शन के बिना दु:खी रहा।

प्रश्न ४—सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—सच्चे देव, शास्त्र और गुरु का पच्चीस दोष रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।

Right faith = सत्य विश्वास (सम्यग्दर्शन)।

प्रश्न ५—शरीर के भेद बताइए।

उत्तर—(१) औदारिक, (२) वैक्रियिक, (३) आहारक, (४) तैजस, (५) कार्माण।

प्रश्न ६—संसारी के भेद कितने हैं ?

उत्तर—(१) त्रस, (२) स्थावर।

प्रश्न ७—परिवर्तन कितने प्रकार होता है ?

उत्तर—(१) द्रव्य, (२) क्षेत्र, (३) काल, (४) भव, (५) भाव परावर्तन कहलाते हैं।

●

द्वितीय ढाल

संसार भ्रमण का कारण

(पद्धरि छन्द, १५ मात्रा)

ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चर्ण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म मर्ण ।
तातें इनको तजिये सुजान, तिन सुन संक्षेप कहूँ बखान ।।१।।

शब्दार्थ—ऐसे = इस प्रकार । मिथ्या दृग ज्ञान चर्ण = मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र । वश = अधीन । भरत = भोगता है । तातें = इसलिए । तजिये = छोड़िए । सुजान = अच्छी तरह जानकर । बखान = वर्णन । कहूँ = कहता हूँ । सुन = सुनो ।

अर्थ—इस प्रकार यह जीव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र के वश होकर चारों गतियों में भटकता है और जन्म-मरण के दुःखों को उठाता है । इसलिए इनको अच्छी तरह जानकर छोड़ो । उन तीनों का संक्षेप में वर्णन करता हूँ, सो सुनो ।

प्रश्न १—मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—विपरीत श्रद्धान का नाम मिथ्यादर्शन कहलाता है ।

प्रश्न २—मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) तत्त्वों का विपरीत ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता है अथवा (२) पर-पदार्थों को अपना मान लेना मिथ्याज्ञान कहलाता है ।

प्रश्न ३—मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वतः या परोपदेश आदि से विषय-भोगों में प्रवृत्ति तथा झूठे आडम्बर के काम करना मिथ्याचारित्र कहलाता है ।

प्रश्न ४—संसार में जन्म-मरण के दुःख उठाने का कारण बताइए ।

उत्तर—'ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चर्ण' मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के वश जीव संसार में घूमता हुआ जन्म-मरण के दुःख उठाता है ।

प्रश्न ५—जन्म-मरण के दुःखों से छूटने का उपाय क्या है ?

उत्तर—मिथ्यादर्शन, ज्ञान और चारित्र को अच्छी तरह समझकर इनको छोड़ना ही दुःखों से छूटने का महान उपाय है ।

प्रश्न ६—मिथ्यादर्शन के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं : (१) अगृहीत मिथ्यादर्शन, (२) गृहीत मिथ्या-दर्शन ।

अगृहीत मिथ्यादर्शन का लक्षण

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व ।।१।।

शब्दार्थ—जीवादि = जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष । प्रयोजनभूत = मतलब के । तत्त्व = पदार्थ । सरधै = श्रद्धान करना । तिनमाहिं = उनमें । विपर्ययत्व = उल्टा ।

अर्थ—जीवादिक सात तत्त्वों में जो प्रयोजनभूत हैं, उनका विपरीत श्रद्धान करना अगृहीत मिथ्यादर्शन है ।

जीव का लक्षण एवं विपरीत श्रद्धान

चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरत चिन्मूरत अनूप ।।२।।

शब्दार्थ—चेतन = जीव । उपयोग = ज्ञानदर्शन । रूप = स्वरूप । बिन मूरत = अमूर्तिक । चिन्मूरत = चैतन्यमय । अनूप = उपमा रहित ।

अर्थ—आत्मा का स्वरूप जानना-देखना है । वह मूर्ति रहित, चैतन्यस्वरूप और उपमा रहित है ।

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतें न्यारी है जीव चाल ।
ताको न जान विपरीत मान, करि करें देह में निज पिछान ।।३।।

शब्दार्थ—पुद्गल = अजीव (पूर्ण गलत स्वभाव वाला) । नभ = आकाश । धर्म = एक द्रव्य । अधर्म = एक द्रव्य । काल = एक द्रव्य (इनमें द्रव्यों के लक्षण आगे तीसरे ढाल में बतायेंगे) । इनतें = इनसे । न्यारी = भिन्न । चाल = प्रवृत्ति । विपरीत = उल्टा । मान = मानना । निज = अपनी । पिछान = पहचान । ताको = उसको ।

अर्थ—अजीव द्रव्य पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन सबसे जीव द्रव्य का स्वरूप भिन्न है । मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के प्रभाव से उनको न जानकर उल्टा श्रद्धान कर शरीर को ही आत्मा मानता है । यह जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है ।

प्रश्न १—अगृहीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रयोजनभूत सात तत्त्वों में विपरीत श्रद्धा अगृहीत मिथ्यात्व है।

प्रश्न २—जीव का लक्षण क्या है ?

उत्तर—"चेतन को है उपयोग रूप।"

प्रश्न ३—उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव का ज्ञान-दर्शन या जानने-देखने की शक्ति को उपयोग कहते हैं।

प्रश्न ४—जीव का स्वरूप बताइए ?

उत्तर—"बिन मूरत, चिन्मूरत अनूप" है। यह जीव अमूर्तिक, चैतन्य मूर्ति और अनुपम है और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल से भिन्न निराली प्रवृत्ति वाला है।

प्रश्न ५—जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान बताइए या जीव तत्त्व की भूल ?

उत्तर—"करि करे देह में निज पिछान" शरीर में अपनी पहचान करना।

प्रश्न ६—आत्मा का स्वरूप बताइए ?

उत्तर—जानने, देखने अथवा ज्ञान, दर्शन, शक्ति वाली वस्तु को आत्मा कहते हैं। आत्मा अमर है।

प्रश्न ७—अमूर्तिक किसे कहते हैं ?

उत्तर—रूप, रस, गन्ध और स्पर्श रहित वस्तु अमूर्तिक कहलाती है।

प्रश्न ८—प्रयोजनभूत तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रयोजनभूत तत्त्व ७ हैं—(१) जीव, (२) अजीव, (३) आस्रव, (४) बन्ध, (५) संवर, (६) निर्जरा एवं (७) मोक्ष।

प्रश्न ९—मिथ्यात्व और मिथ्यादर्शन में क्या भेद है ?

उत्तर—दोनों में कोई भेद नहीं, दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

प्रश्न १०—आत्मा और जीव में क्या अन्तर है ?

उत्तर—आत्मा और जीव में कोई भेद नहीं है। यह एक ही अर्थ के द्योतक दो शब्द हैं।

प्रश्न ११—मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) अगृहीत, (२) गृहीत ।

मिथ्यादृष्टि की मान्यता

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव ।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ।।४।।

शब्दार्थ—रंक = गरीब । राव = राजा । धन = रुपया, पैसा । गृह = घर । गोधन = गाय-भैंसादि । प्रभाव = बड़प्पन । सुत = लड़का । तिय = स्त्री । सबल = बलवान । दीन = कमजोर । सुभग = सुन्दर । मूरख = अज्ञानी । प्रवीन = पण्डित ।

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि "मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं राजा हूँ, मेरे धन है, मेरे घर है, मेरे गाय-भैंस हैं, मेरा बड़प्पन है, मेरे पुत्र है, स्त्री है, मैं बलवान हूँ, मैं कमजोर हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं पण्डित हूँ ।"

प्रश्न १—सुखी-दुःखी, राजा-रंक ये जीव के गुण हैं या पर्याय ?

उत्तर—सुख-दुःखादि सभी जीव के पर्याय हैं, गुण नहीं हैं ।

प्रश्न २—गुण नष्ट होते हैं या नहीं ? और पर्याय नष्ट होती है या नहीं ?

उत्तर—गुण सदैव साथ रहते हैं कभी नष्ट नहीं होते हैं । पर्याय सदा नष्ट होती रहती है ।

प्रश्न ३—मिथ्यादृष्टि की बुद्धि कैसे होती है ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि की पर-पदार्थ में अपनत्व बुद्धि होती है ।

अजीव एवं आस्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नसत आपको नाश मान ।
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन ।।५।।

शब्दार्थ—तन = शरीर । उपजत = उत्पन्न होते । उपज = उत्पत्ति । नसत = नाश होते । आपको = आत्मा की । रागादि = राग-द्वेष, मोह आदि । प्रगट = प्रत्यक्ष । देने = देनेवाला । तिनही = उनको ही । गिनत = मानता है । चैन = सुखरूप ।

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव अपने शरीर की उत्पत्ति को आत्मा की उत्पत्ति तथा शरीर के नाश को आत्मा का नाश मानता है। और राग-द्वेष आदि भाव जो प्रत्यक्ष रूप से आत्मा को दु:ख देनेवाले हैं उन्हीं का सेवन करता हुआ यह जीव उनको सुख देनेवाला मानता है।

प्रश्न १—अजीव तत्त्व का उल्टा श्रद्धान क्या है ?

उत्तर—"तन उपजत अपनी उपज जान, तन नसत आपको नाश मान" शरीरादि भिन्न पदार्थों में आत्मा की कल्पना करना ही अजीव तत्त्व का उल्टा श्रद्धान है।

प्रश्न २—आस्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर—राग-द्वेषादि भाव जो दु:ख देनेवाले हैं उनको सुख देनेवाले मानना।

प्रश्न ३—अजीव के भेद बताइए।

उत्तर—(१) पुद्गल, (२) धर्म, (३) अधर्म, (४) आकाश, (५) काल। ये ५ अजीव के भेद हैं।

बन्ध और संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

शुभ अशुभ बन्ध के फल मँझार,
रति अरति करै निज पद विसार।
आतम हित हेतु विराग, ज्ञान,
ते लखैं आपको कष्टदान ।।६।।

शब्दार्थ—शुभ = अच्छे (पुण्य)। अशुभ = पाप। बन्ध = कर्मबन्ध। फल = परिणाम। मंझार = भीतर। रति = प्रेम। अरति = द्वेष। निजपद = आत्मस्वरूप। विसार = भूलकर। हित = भलाई। हेतु = कारण। विराग = वैराग्य। ज्ञान = सम्यग्ज्ञान। ते = उनको। लखैं = मानता। आपको = अपना। कष्टदान = कष्टदायक।

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व के प्रभाव से अपने आत्मस्वरूप को भूलकर कर्मबन्ध के अच्छे फलों से प्रेम करता है और बुरे फलों से द्वेष करता है। आत्मा की भलाई करनेवाले वैराग्य और ज्ञान को यह जीव दु:खदायी मानता है।

प्रश्न १—बन्ध तत्त्व की भूल या विपरीतता बतलाओ ?

उत्तर—अपने स्वरूप को भूलकर पुण्योदय में या कर्म के शुभ फल में राग करना, पापोदय या कर्म के अशुभ फल में द्वेष करना ।

प्रश्न २—संवर तत्त्व की भूल बताओ ?

उत्तर—"आतम हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान" आत्मा के हितकारी वैराग्य और ज्ञान को कष्टकारक मानना ।

प्रश्न ३—पुण्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—पुनाति आत्मानं इति पुण्य = जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं ।

प्रश्न ४—पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो आत्मा का पतन करे उसे पाप कहते हैं ।

प्रश्न ५—वैराग्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होने को वैराग्य कहते हैं ।

प्रश्न ६—ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करे उसे ज्ञान कहते हैं ।

निर्जरा और मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय ।

शब्दार्थ—न रोके = नहीं रोकता है । चाह = इच्छा । निजशक्ति = आत्मशक्ति को । खोय = खोकर । शिवरूप = मोक्ष का स्वरूप । निराकुलता = आकुलता रहित । न जोय = नहीं मानता है ।

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के प्रभाव से अपनी आत्मशक्ति को खोकर इच्छाओं को नहीं रोकता है । तथा वह मोक्ष के सुख को आकुलता रहित नहीं मानता है ।

प्रश्न १—निर्जरा तत्त्व का विपरीत श्रद्धान बताओ।

उत्तर—"रोके न चाह निज शक्ति खोय।"

प्रश्न २—मोक्ष तत्त्व की भूल या विपरीत श्रद्धान।

उत्तर—"शिवरूप निराकुलता न जोय।"

प्रश्न ३—तप क्या है ?

उत्तर—इच्छा का निरोध तप है। तप से निर्जरा होती है।

प्रश्न ४—निर्जरा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—निर्जरा के दो भेद हैं—(१) सविपाक निर्जरा, (२) अविपाक निर्जरा।

प्रश्न ५—सविपाक निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—उदय में आकर कर्मों का खिर जाना सविपाक निर्जरा है।

प्रश्न ६—अविपाक निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—तपादि के द्वारा संचित कर्मों का एकदेश खिर (नष्ट होना) जाना अविपाक निर्जरा है।

(यहाँ तक गृहीत मिथ्यादर्शन का वर्णन पूरा हुआ)

अगृहीत मिथ्याज्ञान

याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ।।७।।

शब्दार्थ—याही = इस प्रकार। प्रतीति = श्रद्धा या विश्वास। जुत = सहित। कछुक = जो कुछ। दुःखदायक = दुःख देनेवाला। अज्ञान = अगृहीत मिथ्याज्ञान। जान = जानना चाहिए।

अर्थ—इस प्रकार सातों तत्त्वों का विपरीत श्रद्धान सहित जो कुछ ज्ञान होता है उसे अगृहीत मिथ्याज्ञान कहते हैं।

प्रश्न १—अगृहीत का अर्थ क्या है ?

उत्तर—जो अनादिकाल से चला आ रहा है। अथवा जो स्वभाव से होता है उसे अगृहीत कहते हैं।

अगृहीत चारित्र

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्या चरित्र ।
यो मिथ्यात्त्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ।।८।।

शब्दार्थ—इन जुत = अगृहीत मिथ्यादर्शन, ज्ञान सहित । विषयनि में = पंचेन्द्रिय विषयों में । प्रवृत्त = प्रवृत्ति करना । मिथ्याचारित्र = अगृहीत मिथ्याचारित्र । यों = इस प्रकार । मिथ्यात्त्वादि = मिथ्यादर्शन, ज्ञानचारित्र । निसर्ग = अगृहीत । जेह = जो । गृहीत = पर निमित्त से हुए । तेह = उसको ।

अर्थ—अगृहीत मिथ्यादर्शन सहित पाँचों इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति करना अगृहीत मिथ्याचारित्र है । इस प्रकार गृहीत मिथ्यादर्शन का वर्णन करते हैं, सो सुनो ।

प्रश्न—अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—अगृहीत मिथ्यादर्शन ज्ञानपूर्वक पंचेन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति को अगृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं ।

गृहीत मिथ्यादर्शन, कुगुरु एवं कुदेव, कुधर्म का लक्षण

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै, चिर दर्शनमोह एव ।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह ।। १ ।।
धारे कुलिंग लहि महतभाव, ते कुगुरु जन्म जल उपलनाव ।
जे राग-द्वेष मल कर मलीन, वनिता गदादि जुत चिह्न चीन ।।१०।।
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेव ।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ।।११।।
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहैं अशर्म ।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्त्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ।।१२।।

शब्दार्थ—अन्तर = भीतर । रागादिक = राग-द्वेष आदि । जेह = जो बाहर = प्रत्यक्ष में । अम्बर तैं = वस्त्र आदि से । सनेह = ममता । कुलिंग = खोटा भेष । धारैं = धारण करते हैं । लहि = पाकर । महतभाव = बड़प्पन । ते = वे । जन्म जल = संसाररूपी समुद्र में । उपल = पत्थर । नाव = नौका । मलकर = मैल से । मलीन = मैले । वनिता = स्त्री । गदादि = गदचक्र वगैरह । चिह्न = पहचान ।

ते = वे । शठ = मूर्ख । सेव = सेवा । तिन = उनका । भव-भ्रमण = संसार में भटकने का । छेव = अन्त । भावहिंसा = भाव प्राणों का घात । समेत = सहित । दर्वित = द्रव्यहिंसा । खेत = क्षेत्र । सरधै = श्रद्धा न करने से । लहे = पाता है । अशर्म = दुःख । याकूँ = इसको । गृहीत मिथ्यात्त्व = मिथ्यादर्शन । जान = समझो । अज्ञान = मिथ्याज्ञान । अब = अब । गृहीत = गृहीत । अज्ञान = मिथ्याज्ञान को । सुन = सुनो ।

प्रश्न १—गृहीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—कुगुरु, कुदेव, कुधर्म का सेवन गृहीत मिथ्यात्व है ।

प्रश्न २—कुगुरु का लक्षण बताइए ।

उत्तर—"अन्तर रागादि धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तें सनेह ।
धारैं कुलिंग लहि महतभाव, ते कुगुरु ।"

अर्थात् जो भीतर से राग-द्वेष से युक्त हैं, धन, कपड़ा आदि से मोह करते हैं । खोटे भेषों को धारण कर बड़प्पन पाकर साधु कहलाते हैं । वे कुगुरु हैं ।

प्रश्न ३—कुगुरु की पूजा-भक्ति का फल क्या है ?

उत्तर—"ते कुगुरु जन्म जल उपलनाव" वे कुगुरु पत्थर की नाव के समान होते हैं । जैसे—पत्थर की नाव यदि समुद्र में चलाई जाय तो स्वयं डूबती है और यात्रियों को भी डुबाती है । उसी प्रकार जो ऐसे कुगुरुओं की भक्ति, पूजा, वन्दनादि करते हैं, उनके वे गुरु भी संसारसमुद्र में डूबते हैं और शिष्यों को भी डुबोते हैं । अर्थात् उनकी भक्ति-पूजा पतन का कारण है ।

प्रश्न ४—कुदेव का लक्षण बताइये ।

उत्तर—"जे राग-द्वेष मलकर मलीन, वनिता-गदादि -जुत चिह्न चीन । ते हैं कुदेव ।"

अर्थात—जो राग-द्वेषरूपी मैल से मैले हैं, स्त्री, गदा आदि चिह्नों से जो पहचाने जाते हैं वे कुदेव कहलाते हैं ।

प्रश्न ५—कुदेव की सेवा कौन करता है ?

उत्तर—"तिनकी जु सेव, शठ करत" कुदेवों की सेवा मूर्ख जीव करते हैं ।

प्रश्न ६—कुदेव की सेवा से संसार-भ्रमण छूटता है या नहीं ?

उत्तर—"न तिन भव भ्रमण छेव" कुदेव की सेवा से संसार-भ्रमण नहीं छूटता अपितु बढ़ता ही है।

प्रश्न ७—कुधर्म का लक्षण बताइए।

उत्तर—"रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत। जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म।"

(१) राग-द्वेष करना भाव हिंसा है।

(२) त्रस और स्थावर जीवों का घात करना, उनको मारना द्रव्य-हिंसा है। हिंसा सहित जो-जो क्रियाएँ हैं उन्हें कुधर्म कहते हैं।

प्रश्न ८—कुधर्म का श्रद्धान करने से क्या फल होता है ?

उत्तर—"तिन सरधै जीव लहै अशर्म" कुधर्म का श्रद्धान करने से जीव दुःख पाता है।

प्रश्न ९—गृहीत किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो परोपदेशादि परनिमित्त से होता है उसे गृहीत कहते हैं।

प्रश्न १०—गृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—कुगुरु, कुदेव, कुधर्म के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

प्रश्न ११—कुगुरु, कुदेव, कुधर्म की सेवा का फल बताइये।

उत्तर—"जो कुगुरु, कुदेव, कुधर्म सेव, पोषै चिर दर्शन मोह" अर्थात् जो कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सेवा करता है वह चिरकाल तक दर्शनमोह को पुष्ट करता है।

प्रश्न १२—दर्शनमोह किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण को घातने वाले को दर्शनमोह कहते हैं।

गृहीत मिथ्याज्ञान

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादिरचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ।।१३।।

शब्दार्थ—एकान्त = एकपक्षरूप कथन। दूषित = खोटे। विषयादिक = पाँचों इन्द्रियों के विषय आदिक। पोषक = पुष्ट करनेवाले। अप्रशस्त = खोटे। समस्त = सम्पूर्ण। कपिलादि = सांख्य, बौद्ध, वैशेषिक आदि। रचित = बनाये हुए। श्रुत = शास्त्र। अभ्यास = पढ़ना-पढ़ाना। सो = वह। कुबोध = गृहीत मिथ्याज्ञान। (बहु) बहुत। देन = देनेवाला। त्रास = दुःख।

अर्थ—एकान्त रूप से कथन, दूषित/पंचेन्द्रियों के विषयों को पुष्ट करने वाले, कपिलादि के द्वारा बनाये हुए सम्पूर्ण खोटे शास्त्रों को पढ़ना, पढ़ाना गृहीत मिथ्याज्ञान है। वह बहुत दुःख देनेवाला है।

प्रश्न १—एकान्तवाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनेक धर्मों की अपेक्षा न करके वस्तु का एकरूप से ही कथन करना। जैसे राम-पुत्र ही है।

प्रश्न २—अनेकान्तवाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—भिन्न-भिन्न धर्मों की अपेक्षा से एक वस्तु का विरोध रहित अनेक धर्मात्मक कथन करनेवाला सिद्धान्त अनेकान्त जैनदर्शन का मूल सिद्धान्त है।

प्रश्न ३—उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर—एक राम में अनेक धर्म हैं। कारण वस्तु अनन्त धर्मात्मक है—

राम पुत्र भी है, पिता भी है, पति भी है, ससुर भी है आदि-आदि।

एक ही राम दशरथ की अपेक्षा पुत्र थे।

एक ही राम लव-कुश की अपेक्षा पिता भी थे।

एक ही राम सीता की अपेक्षा पति भी थे।

परन्तु सब धर्मों को न मानकर मात्र एक धर्म को मानना ही एकान्त है। यद्यपि राम दशरथ की अपेक्षा पुत्र ही हैं, पर पुत्र की अपेक्षा पिता भी हैं। 'भी' अनेकान्त का सूचक है और अपेक्षा रहित 'ही' एकान्त का सूचक है। अनेकान्त उदारता का द्योतक है।

प्रश्न ४—पंचेन्द्रिय के विषय कौन से हैं ?

उत्तर—स्पर्शन इन्द्रिय का—स्पर्श
रसना इन्द्रिय का—रस
घ्राण इन्द्रिय का—गन्ध

चक्षु इन्द्रिय का—वर्ण, और

कर्ण इन्द्रिय का—शब्द, ये पाँच इन्द्रिय विषय हैं।

प्रश्न ५—खोटे शास्त्र कौन से कहलाते हैं ?

उत्तर— (१) जिनमें एकान्त रूप से कथन हो।

(२) जिनमें पंचेन्द्रिय विषयों का वर्णन हो ऐसे अश्लील उपन्यास, नाटक, चोर कथाएँ, खोटी कथाएँ आदि।

(३) जिनमें हिंसा में धर्म बताया गया हो।

(४) जिनमें पूर्वापर विरोध पाया जाता हो।

(५) जो सन्देह सहित हो।

आदि उपर्युक्त लक्षणोंयुक्त राग-द्वेष बढ़ाने वाले शास्त्र खोटे शास्त्र कहलाते हैं। सज्जनों को इन्हें कभी नहीं पढ़ना चाहिए।

प्रश्न ६—गृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—इस प्रकार खोटे शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त सारा ज्ञान गृहीत मिथ्याज्ञान कहलाता है।

प्रश्न ७—कुशास्त्रों के अध्ययन का फल बताइए।

उत्तर—"कपिलादिरचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहुदेन त्रास।" खोटे शास्त्रों का अध्ययन बहुत दुःखों को देनेवाला है।

गृहीत मिथ्याचारित्र

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविधविध देह दाह।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन॥१४॥

शब्दार्थ—ख्याति = प्रसिद्धि। लाभ = फायदा। पूजा = प्रतिष्ठा, इज्जत। चाह = इच्छा। धरि = धारण करके। विविध = नाना। बिध = प्रकार। देह = शरीर। दाहकरन = जलाने वाली। आतम = आत्मा। अनात्म = शरीरादि परवस्तुएँ। ज्ञान = ज्ञान से। हीन = रहित। करनी = क्रियाएँ। तन = शरीर। छीन करन = नष्ट करने वाली।

अर्थ—जो अपनी प्रसिद्धि, रुपये-पैसे का लाभ, प्रतिष्ठा आदि की चाह से शरीर को जलानेवाली आत्मा और पर वस्तुओं के ज्ञान से रहित

शरीर को क्षीण करने वाली अनेकानेक जो-जो क्रियाएँ की जाती हैं उन्हें गृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं।

प्रश्न ८—गृहीत मिथ्याचारित्र का लक्षण बताइए।

उत्तर—ख्याति, लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा की भावना से धारण किया गया जप-तप, संयम जो स्व-परविवेक से रहित है, सारा गृहीत मिथ्याचारित्र है जैसे— पंचाग्नि तप करना।
पर्वत से गिरना।
शक्ति से अधिक त्याग आदि।

प्रश्न ९—इसका फल बताइए।

उत्तर—शरीर का सूखना मात्र है। आत्म-कल्याण नहीं है।

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग,
अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजालभ्रमण को देहु त्याग,
अब 'दौलत' निज आतम सुपाग।।१५।।

शब्दार्थ—ते सब = उन सब। पंथ = रास्ता। लाग = लगाकर। जग = संसार। जाल = फन्दा। भ्रमण = घूमना। निज = अपना। पाग = अच्छी तरह।

अर्थ—उन सब मिथ्याचारित्रों का त्याग कर अपनी आत्मा की भलाई के मार्ग में लग जाना चाहिए। हे दौलतराम। संसार-भ्रमण का त्याग कर अपनी आत्मा में अच्छी तरह लीन हो जाओ।

प्रश्न १—भव्यात्माओं को क्या करना चाहिए?

उत्तर—सब प्रकार मिथ्याचारित्र को छोड़कर, आत्मा की उन्नति के मार्ग में लग जाना चाहिए।

प्रश्न २—आत्मा में लीन होने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर—"जग जाल भ्रमण को देहु त्याग" संसार-भ्रमण की कारण मिथ्या विपरीत मान्यता का त्याग करो। बिना मिथ्यात्व को त्यागे आत्मध्यान कभी नहीं बनता है।

●

तृतीय ढाल

सच्चा सुख और मोक्षमार्ग

(नरेन्द्र छन्द)

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये ।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरण, शिवमग सो द्विविध विचारो ।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ।।१।।

शब्दार्थ—आकुलता = व्यग्रता, शल्य, माया-लालसा आदि । शिवमाहिं = मोक्ष में । शिवमग = मोक्ष-मार्ग । लाग्यो = लगना । द्विविध = दो प्रकार । सत्यारथ = वास्तविक । व्यवहारो = व्यवहार, निश्चय का कारण ।

अर्थ—आत्मा का कल्याण सुख है । वह सुख आकुलता मिट जाने पर मिलता है आकुलता मोक्ष में नहीं है, अत: मोक्ष-मार्ग में लग जाना चाहिए । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र—इन तीनों की प्राप्ति होना मोक्ष-मार्ग है । वह दो प्रकार का है—(१) निश्चय मोक्ष-मार्ग, (२) व्यवहार मोक्ष-मार्ग है और जो निश्चय का कारण है वह व्यवहार मोक्ष-मार्ग है ।

प्रश्न १—आत्मा का हित क्या है ?

उत्तर—"आतम को हित है सुख" आत्मा का हित सुख है ।

प्रश्न २—वह सुख कैसा है ?

उत्तर—"सो सुख आकुलता बिन कहिये ।" वह सुख आकुलता रहित होता है ।

प्रश्न ३—आकुलता कहाँ नहीं है ?

उत्तर—"शिवमाहिं न" आकुलता मोक्ष में नहीं है ।

प्रश्न ४—अत: क्या करना चाहिये ?

उत्तर—"शिवमग लाग्यो चहिये ।" मोक्ष-मार्ग में लगना चाहिये ।

प्रश्न ५—मोक्ष-मार्ग क्या है ?

उत्तर—"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण शिवमग" सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों की एकता मोक्ष-मार्ग है। अलग-अलग नहीं।

प्रश्न ६—वह कितने प्रकार का है ?

उत्तर—"द्विविध विचारो" मोक्ष-मार्ग दो प्रकार का है—

(१) निश्चय, (२) व्यवहार।

प्रश्न ७—निश्चय मोक्ष-मार्ग कौन-सा है ?

उत्तर—"जो सत्यार्थ रूप सो निश्चय" जो वास्तविकता का कथन करे वह निश्चय है।

प्रश्न ८—व्यवहार मोक्ष-मार्ग कौन-सा है ?

उत्तर—"कारण सो व्यवहारो" जो निश्चय का कारण है वह व्यवहार मोक्ष-मार्ग है।

निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में, रुचि-सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपनो सो, सम्यक्ज्ञान कला है।।
आप रूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियत को होई।।२।।

शब्दार्थ—परद्रव्यनतैं = परवस्तुओं से। भिन्न = अलग। आपमें = आत्मा में। रुचि = विश्वास। भला = निश्चय। जानपनो = जानना। कला = गुण या अंश। थिर = स्थिर रूप से। लीन रहे = संलग्न रहे। हेतु = कारण। नियत = निश्चय। होई = होता है।

अर्थ—पुद्गलादि परवस्तुओं से भिन्न अपनी आत्मा के स्वरूप का श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। परवस्तुओं से अलग आत्मा के स्वरूप को जानना निश्चय सम्यग्ज्ञान है। परवस्तुओं से अलग होकर अपने आत्मरूप में स्थिरतापूर्वक रम जाना निश्चय सम्यक्चारित्र है। अब व्यवहार मोक्ष-मार्ग को सुनो जो निश्चय मोक्ष-मार्ग का कारण है।

प्रश्न १—परद्रव्य कितने हैं व कौन से हैं ?

उत्तर—जीव द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये पाँच द्रव्य परद्रव्य हैं ।

प्रश्न २—हमारा स्वद्रव्य कौन-सा है ?

उत्तर—हमारा जीव स्वद्रव्य है ।

प्रश्न ३—तीन रत्न कौन से हैं ?

उत्तर—(१) सम्यग्दर्शन, (२) सम्यग्ज्ञान और (३) सम्यग्चारित्र ये तीन रत्न हैं ।

प्रश्न ४—निश्चय सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—"परद्रव्यनतें भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है ।"

प्रश्न ५—निश्चय सम्यग्ज्ञान का स्वरूप बताइए ।

उत्तर—"आप रूप को जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है ।"

प्रश्न ६—निश्चय सम्यग्चारित्र का स्वरूप बताइए ।

उत्तर—"आप रूप में लीन रहे सम्यग्चारित्र सोई ।"

प्रश्न ७—निश्चय मोक्ष-मार्ग का निमित्त कौन है ?

उत्तर—व्यवहार मोक्ष-मार्ग निश्चय मोक्ष-मार्ग का निमित्त कारण है ।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्धरु संवर जानो ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो ।।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो ।
तिनको सुन सामान्य विशेषै, दिढ़ प्रतीत उर आनो ।।३।।

शब्दार्थ—ज्यों का त्यों = जैसा का तैसा । तिनको = उनको । सरधानो = श्रद्धान करना । व्यवहारी = व्यवहार । समकित = सम्यग्दर्शन । इन = तत्त्वों का । रूप = स्वरूप । बखानो = वर्णन करते हैं । सामान्य = साधारण रूप से । विशेष = विशेष रूप से । उर = मन । दिढ़ = अटल । प्रतीत = विश्वास । आनो = करना चाहिए ।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् ने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—ये सात तत्त्व कहे हैं। इनका जैसा-का-तैसा श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इनका (तत्त्वों का) सामान्य और विशेष रूप से वर्णन किया जाता है, उसे सुनकर मन में अटल विश्वास करना चाहिए।

प्रश्न १—जिनेन्द्रदेव ने तत्त्व कितने बताए हैं ?

उत्तर—जिनेन्द्रदेव ने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—सात तत्त्व कहे हैं।

प्रश्न २—व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीवादि सात तत्त्वों का जैसा-का-तैसा श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न ३—सामान्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनेक पदार्थों में समानता से पाया जानेवाला धर्म (गुण) सामान्य कहलाता है। जैसे—अस्तित्व, वस्तुत्व आदि।

प्रश्न ४—विशेष किसे कहते हैं ?

उत्तर—सब वस्तुओं में न रहकर मुख्य-मुख्य वस्तुओं में रहने वाला धर्म (गुण) विशेष कहलाता है। जैसे, जीवद्रव्य में चेतनत्व।

जीव के भेद

बहिरातम अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतमज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।४।।

शब्दार्थ—गिनै = माने। मुधा = मूर्ख। द्विविध = दो प्रकार। संग = परिग्रह। बिन = रहित। शुध = शुद्ध। उपयोगी = उपयोग वाले। मुनि = महाव्रती दिगंबर साधु। निजध्यानी = आत्मा का ध्यान करनेवाला।

अर्थ—जीव के तीन भेद हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा। अज्ञानी बहिरात्मा, शरीर और आत्मा को एक मानता है। अन्तरात्मा के उत्तम, मध्यम और जघन्य—तीन भेद हैं। अन्तरंग व बहिरंग दो प्रकार के परिग्रह से रहित शुद्धोपयोगी मुनिराज उत्तम अन्तरात्मा हैं।

प्रश्न १—जीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—जीव के तीन भेद हैं—(१) बहिरात्मा, (२) अन्तरात्मा, (३) परमात्मा।

प्रश्न २—बहिरात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर—"देह जीव को एक गिने बहिरातम" जो शरीर और आत्मा को एक गिनता है उसे बहिरात्मा कहते हैं।

प्रश्न ३—अन्तरात्मा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अन्तरात्मा के तीन भेद हैं—(१) उत्तम, (२) मध्यम, (३) जघन्य।

प्रश्न ४—उत्तम अन्तरात्मा कौन है ?

उत्तर—"द्विविध संग बिन शुध उपयोगी" दो प्रकार परिग्रह रहित शुद्धोपयोगी मुनि (दिगंबर साधु) उत्तम अन्तरात्मा हैं।

प्रश्न ५—दो प्रकार का परिग्रह कौनसा है ?

उत्तर—(१) अन्तरंग, (२) बाह्य।

अन्तरंग परिग्रह चौदह प्रकार का है—(१) मिथ्यात्व, (२) क्रोध, (३) मान, (४) माया, (५) लोभ, (६) हास्य, (७) रति, (८) अरति, (९) शोक, (१०) भय, (११) जुगुप्सा, (१२) स्त्री वेद, (१३) पुरुष वेद, (१४) नपुंसक वेद।

बाह्य परिग्रह दस प्रकार का है—(१) क्षेत्र, (२) वास्तु, (३) हिरण्य, (४) सुवर्ण, (५) धन, (६) धान्य, (७) दासी, (८) दास, (९) कुप्य और (१०) भाँडे (बर्तन)।

प्रश्न ६—मध्यम अन्तरात्मा कौन-कौन हैं ?

उत्तर—पाँचवें और छठे गुणस्थानवर्ती जीव—श्रावक-श्राविका, आर्यिका और मुनिराज—ये मध्यम अन्तरात्मा कहलाते हैं।

प्रश्न ७—गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—मोह और योग के निमित्त से होनेवाली जीव की परिणति को गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न ८—जघन्य अन्तरात्मा कौन है ?

उत्तर—व्रतरहित सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है।

प्रश्न ९—मोक्षमार्गी कौन हैं ?

उत्तर—उत्तम अन्तरात्मा, मध्यम अन्तरात्मा और जघन्य अन्तरात्मा तीनों मोक्षमार्ग पर चलनेवाले हैं।

प्रश्न १०—परमात्मा किसे कहते है ?

उत्तर—कर्ममल से रहित परम पद में स्थित आत्मा परमात्मा है।

प्रश्न ११—परमात्मा के भेद कितने हैं ?

उत्तर—"सकल निकल परमातम द्वैविध"—(१) सकल परमात्मा, (२) निकल परमात्मा।

प्रश्न १२—कल का क्या अर्थ है ?

उत्तर—कल यानी शरीर।

प्रश्न १३—सकल परमात्मा का लक्षण बताइए ?

उत्तर—तिनमें घाति निवारी,
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी।

घातिया कर्मों से रहित, लोकालोक को जाननेवाले अरहन्त परमेष्ठी सकल परमात्मा हैं। "स" यानी सहित। "कल" यानी शरीर, शरीर सहित।

प्रश्न १४—घातिया कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो आत्मा के असली स्वरूप को घाते हैं, उन्हें घातिया कर्म कहते हैं।

प्रश्न १५—घातिया कर्म कितने हैं ?

उत्तर—चार—(१) ज्ञानावरणी, (२) दर्शनावरणी, (३) मोहनीय, (४) अन्तराय।

उत्तम ऋद्धिधारी मुनियों की अपेक्षा छठे गुणस्थानवर्ती मुनियों को मध्यम अन्तरात्मा कहा है, वास्तव में तो मुनिजन उत्तम अन्तरात्मा ही हैं।

प्रश्न १६—अन्तरात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने भेद विज्ञान से आत्मा को देहादि परवस्तुओं से भिन्न माननेवाला जीव अन्तरात्मा कहलाता है।

प्रश्न १७—शुद्धोपयोगी किसे कहते हैं ?

उत्तर—शुभ-अशुभ रागद्वेष की परिणति से रहित ज्ञान दर्शन की अवस्थायुक्त जीव (आत्मा) शुद्धोपयोगी कहलाता है।

मध्यम अन्तर आतम है, जे देशव्रती अनगारी ।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी ।।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी ।
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी ।।५।।

शब्दार्थ—देशव्रती = एक देशव्रत पालनेवाले, पंचम गुणस्थानवर्ती । अनगारी = परीषह रहित मुनि छठवें गुणस्थानवर्ती । अविरत—व्रत-रहित । समदृष्टि = सम्यग्दृष्टि (चतुर्थ गुणस्थान वाले) । चारी = चलानेवाले (पालने वाले) । तिनमें = उनमें । घाति = घातिया कर्म । निवारि = नाश करनेवाले । लोकालोक = लोक और अलोक । निहारी = देखनेवाले । सकल = शरीर या कर्म सहित ।

अर्थ—देशव्रतों के पालनेवाले श्रावक और सर्वदेशव्रतों के पालनेवाले छठे गुणस्थानवर्ती मुनि मध्यम अन्तरात्मा हैं । व्रतरहित सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा हैं ये तीनों अन्तरात्मा मोक्षमार्ग पर चलनेवाले होते हैं । परमात्मा के दो भेद हैं—(१) सकल परमात्मा, (२) निकल परमात्मा । घातिया कर्मों का नाश करनेवाले, लोक-अलोक को देखने-जाननेवाले अरहन्त भगवान सकल परमात्मा कहलाते हैं ।

प्रश्न १—देशव्रती किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो एक देश व्रतों का पालन करता है ।
(२) त्रस हिंसा का त्यागी है, स्थावर की हिंसा का त्यागी नहीं है वह पाँचवाँ गुणस्थानवर्ती जीव देशव्रती कहलाता है ।

प्रश्न २—अनगारी का क्या अर्थ है ?

उत्तर—न अगार इति अनगार = जिसका कोई घर नहीं ऐसे सकलव्रती को अनगार कहते हैं । (छठा गुणस्थानवर्ती) ।

प्रश्न ३—अरहन्त किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—चार घातिया, कर्मरहित, अनन्त चतुष्टय सहित, वीतराग, सर्वज्ञ हितोपदेशी, केवलज्ञानी जीव को अरहन्त कहते हैं ।

प्रश्न ४—अलोक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें आकाश द्रव्य को छोड़कर अन्य द्रव्य नहीं रहते, वह अलोक है ।

निकल परमात्मा का लक्षण एवं आनन्द का उपाय

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल, वर्जित सिद्ध महन्ता ।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै ।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै ।।६।।

शब्दार्थ—ज्ञानशरीरी = ज्ञान ही जिसका शरीर है । त्रिविध = तीन प्रकार । कर्ममल = कर्मरूपी मैल । वर्जित = रहित । महंता = महान् आत्मा । निकल = शरीर रहित । अमल = मल रहित । परमातम = उत्कृष्ट जीव । भोगैं = भोगते हैं । शर्म = सुख । अनन्ता = अविनाशी । बहिरातमता = मिथ्या दृष्टिपना । हेय = छोड़ने योग्य । तजि = छोड़ो । हूजै = बनो । ध्यान = ध्यान करो ।

अर्थ—ज्ञान ही जिनका शरीर है, तीन प्रकार के कर्ममल से रहित सिद्ध भगवान निकल परमात्मा कहलाते हैं । जो अनन्त काल तक सुख भोगते हैं । बहिरात्मपने (मिथ्यादृष्टिपने) को छोड़ने योग्य जान छोड़ो और अन्तरात्मा बनो । परमात्मा का हमेशा ध्यान करो, जिससे सच्चे सुख की प्राप्ति हो ।

प्रश्न १—निकल परमात्मा कौन है ?

उत्तर—तीन प्रकार के कर्मों से रहित सिद्ध भगवान् निकल परमात्मा हैं । नि यानी रहित, कल यानी शरीर = शरीर रहित सिद्ध निकल परमात्मा हैं ।

प्रश्न २—तीन प्रकार के कर्म कौन से हैं ?

उत्तर— (१) द्रव्यकर्म—ज्ञानावरणादि आठ कर्म ।
(२) भावकर्म—राग-द्वेष, क्रोधादि ।
(३) नोकर्म— ६ पर्याप्ति व ३ शरीरयोग्य कर्म परमाणु ।
ये तीन प्रकार के कर्म हैं ।

प्रश्न ३—भाव कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—राग-द्वेष मोहरूप खोटे परिणामों को भावकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४—नोकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—औदारिक आदि तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल परमाणुओं का ग्रहण नोकर्म कहलाता है ।

प्रश्न ५—सच्चे सुख का उपाय क्या है ?

उत्तर—बहिरात्मापने का त्याग कर, अन्तरात्मा बनो और निरन्तर परमात्मा का ध्यान करो, यही सच्चे सुख का उपाय है ।

अजीव द्रव्य

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं ।
पुद्गल पञ्च वरन रस गन्ध दु फरस वसु जाके हैं ।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी ।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी ।।७।।

शब्दार्थ—वरन = वर्ण । दु = दो । फरस = स्पर्श । वसु = आठ । जाके = जिसके । जिय = जीव । चलन = चलने में । सहाय = सहायक । मनरूपी = रूपरहित । तिष्ठत = ठहराते हुए । जिन = जिनेन्द्र भगवान । बिन मूर्ति = अमूर्ति, निरूपी = कहा है ।

अर्थ—(१) जिसमें जानने-देखने की शक्ति नहीं है वह अजीव है ।
(२) पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श जिसमें पाये जायें वह पुद्गल है ।
(३) जो जीव और पुद्गल को चलने में सहकारी है, वह अमूर्तिक धर्म द्रव्य है ।
(४) जो ठहरते हुए जीव और पुद्गलों को ठहरने में सहायक होता है उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं ।

प्रश्न १—अजीव द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—पाँच अजीव द्रव्य हैं—(१) पुद्गल, (२) धर्म, (३) अधर्म, (४) आकाश और (५) काल ।

प्रश्न २—पाँच वर्ण कौनसे हैं ?

उत्तर—(१) काला (२) पीला (३) नीला (४) लाल (५) सफेद ।

प्रश्न ३—पाँच रस बताइए ?

उत्तर—(१) खट्टा (२) मीठा (३) कड़ुवा (४) चर्परा (५) कसेला ।

प्रश्न ४—दो गन्ध बताइए ?

उत्तर—(१) सुगन्ध और (२) दुर्गन्ध ।

प्रश्न ५—आठ स्पर्श बताइए ?

उत्तर—(१) हल्का, (२) भारी, (३) रूखा, (४) चिकना, (५) कड़ा, (६) नर्म, (७) ठण्डा और (८) गर्म ।

सकल द्रव्य को बास जास में, सो आकाश पिछानो ।
नियत वर्तना निशदिन सो, व्यवहार काल परिमानो ।।

आस्रव तत्त्व

यो अजीव अब आस्रव सुनिये, मन, वच, काय त्रियोगा ।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ।।८।।

शब्दार्थ—सकल = सम्पूर्ण । बास = निवास । जास में = जिसमें । सो = वह । पिछानो = जानो । नियत = निश्चय । वर्तना = बदलना या परिणमाना । निशदिन = रात-दिन । परमाद = प्रमाद । उपयोगा = आत्मा की प्रवृत्ति ।

अर्थ— (१) जिसमें सम्पूर्ण द्रव्य निवास करते हैं, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं ।

(२) वर्तना लक्षण वाला काल द्रव्य है ।

इस प्रकार अजीव तत्त्व का वर्णन हुआ, अब आस्रव तत्त्व का वर्णन किया जाता है । मन, वचन, काय, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय सहित आत्मा की प्रवृत्ति है उसे आस्रव तत्त्व कहते हैं ?

प्रश्न १—आकाश द्रव्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर—यह एक अखण्ड द्रव्य है ।

प्रश्न २—काल द्रव्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर—काल द्रव्य के २ भेद हैं—(१) निश्चय काल, (२) व्यवहार काल ।

प्रश्न ३—निश्चय काल और व्यवहार काल के लक्षण बताइए ?

उत्तर—स्वयं पलटना और दूसरी वस्तुओं को पलटाने वाला निश्चय काल है और रात्रि-दिन, घड़ी-घण्टा आदि व्यवहार काल है ।

प्रश्न ४—आस्रव तत्त्व का लक्षण बताइए ?

उत्तर—''मन, वच, काय त्रियोगा,
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।''

प्रश्न ५—आस्रव के भेद बताइए ?

उत्तर—५ मिथ्यात्व, १२ अविरति, २५ कषाय, १५ प्रमाद, १५ योग ये आस्रव के भेद हैं।

प्रश्न ६—पाँच मिथ्यात्व बताइए ?

उत्तर—(१) विपरीत, (२) एकान्त, (३) विनय, (४) संशय, (५) अज्ञान।

प्रश्न ७— १५ प्रमाद बताइए ?

उत्तर— ४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रिय, १ निद्रा और १ स्नेह।

प्रश्न ८—१२ अविरति बताइए ?

उत्तर—छह काय जीवों की विराधना करना और ५ इन्द्रिय व मन को वश में नहीं करना।

आस्रव त्यागोपदेश बंध, संवर, निर्जरा तत्त्व का लक्षण

ये ही आतम के दुख-कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे विधिसों सो, बन्धन कबहुँ न सजिये।
शम-दम तें जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये।
तप बलतें विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥१॥

शब्दार्थ—जीव प्रदेश = आत्मा के प्रदेश। विधिसों = कर्मों से। बँधे = बँधना। कबहुँ = कभी। सजिये = करना चाहिए। शम = कषायों का उपशम। दम = इन्द्रिय दमन। आदरिये = आदर करना चाहिए। तप बलतें = तप के प्रभाव से। विधि = कर्म। झरन = दूर होना। ताहि = उस निर्जरा को। आचरिये = प्राप्त करना चाहिए।

अर्थ—ये आस्रव (मिथ्यात्वादि) जीव को दुःख देते हैं; इसलिए इनको छोड़ना चाहिए। जीव के प्रदेशों और कर्म परमाणुओं का परस्पर एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध हो जाना बन्ध है। ऐसा बन्धन कभी नहीं करना चाहिए। कषायों के उपशम और पंचेन्द्रियों के एवं मन के वश में करने से

जो कर्म नहीं आते हैं उसे संवर कहते हैं । उसका सदा आदर करना चाहिए । तप के प्रभाव से कर्मों का एकदेश दूर होना निर्जरा कहलाती है, उसको हमेशा प्राप्त करना चाहिए ।

प्रश्न १—आत्मा को निरन्तर दुःख देनेवाले कौन हैं ? उनका क्या करना चाहिए ?

उत्तर—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग—ये आस्रव आत्मा को दुःख देते हैं, अतः उनका त्याग करना चाहिए ।

प्रश्न २—बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव के प्रदेशों और कर्म परमाणुओं का परस्पर एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध हो जाना बन्ध है ।

प्रश्न ३—संवर तत्त्व का लक्षण बताइए ?

उत्तर—"शम दम तें जो कर्म न आवें, सो संवर"

कषायों को **शमन** और इन्द्रियों का **दमन** संवर कहलाता है ।

प्रश्न ४—निर्जरा तत्त्व का लक्षण बताइए ?

उत्तर—तप के प्रभाव से कर्मों का एकदेश दूर होना निर्जरा कहलाती है ।

मोक्ष तत्त्व, व्यवहार सम्यक्त्व एवं उसके कारण

सकल कर्मतें रहित अवस्था, सो शिवथिर सुखकारी ।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ।।
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो ।
ये ही मान समकित को कारण, अष्ट अंग जुत धारो ।।१०।।

शब्दार्थ—सकल = सम्पूर्ण । कर्मतें = कर्मों से । अवस्था = हालत । थिर = स्थिर । परिग्रह बिन = परिग्रह रहित । दयाजुत = दयामयी । सारो = श्रेष्ठ । समकित = सम्यग्दर्शन । अष्ट अंगजुत = आठ अंग सहित ।

अर्थ—सम्पूर्ण कार्यों से रहित जीव की शुद्ध अवस्था मोक्ष है । वह स्थिर सुख को देनेवाली है । इस प्रकार जो सात तत्त्वों का श्रद्धान है वह व्यवहार सम्यक्त्व कहलाता है । वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, सच्चे देव अन्तरंग बहिरंग परिग्रह रहित वीतराग गुरु, श्रेष्ठ अहिंसामयी जैनधर्म ये ही

सब सम्यग्दर्शन के कारण हैं। इस सम्यग्दर्शन को अष्ट अंग सहित धारण करना चाहिए।

प्रश्न १—मोक्ष किसे कहते हैं? मोक्ष सुख कैसा है?

उत्तर—अष्ट कर्मों से रहित जीव की शुद्ध अवस्था को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष सुख शाश्वत है और अतीन्द्रिय है एवं अनन्त सुख को करने वाला है।

प्रश्न २—मोक्ष में टी० वी०, सिनेमा, अच्छे-अच्छे भोजन, डनलप के गद्दे आदि हैं क्या?

उत्तर—ऐसी सारी सुख-सुविधाएँ नहीं हैं।

प्रश्न ३—फिर मोक्ष में सुख कैसे?

उत्तर—टी० वी०, सिनेमा आदि वस्तुओं से मिलने वाला सुख क्षणिक है पर मोक्ष का सुख शाश्वत है। जो भी वहाँ जाता है, सुख में ऐसा मग्न हो जाता है कि फिर लौटकर नहीं आता है।

प्रश्न ४—वहाँ खाना-पीना कुछ नहीं है। इन्द्रिय-विषय भी नहीं, सोने को गद्दा नहीं, टी०वी०, सिनेमा नहीं, फिर वहाँ सुख कैसे?

उत्तर—एक राजा था। कई दिनों से सांसारिक कार्यों में उलझा हुआ था। मन-मस्तिष्क सभी परेशान थे। न खाना रुचता, न टी०वी०, न सिनेमा। परेशान था। हे भगवान्! कुछ क्षण के लिए शान्ति मिल जाये। तभी सायंकाल के समय सब कामों से हटकर एकान्त में सुन्दर उद्यान में मौन-मुद्रा में बैठा हुआ अपने-आपको सुखी मान रहा है। मन प्रफुल्लित है। उस समय न खा रहा है, न पी रहा है, न टी० वी० है, न सिनेमा, जमीन पर बैठा है, फिर भी सुखी है। अन्दर-ही-अन्दर प्रमुदित है, किसी से न बोलना चाहता है, न किसी को देखना चाहता है। अपने-आपमें आनन्द का अनुभव करता है।

इसी से सिद्ध होता है कि वास्तव में ये सब इन्द्रिय-विषय सुख नहीं, सुखाभास हैं। अतीन्द्रिय सुख ही वास्तविक आनन्द है जो इन्द्रिय-विषयों की गन्ध से भी रहित है। ऐसे शाश्वत सुख का रसास्वादन सिद्ध (मोक्ष में) सदैव करते हैं। सुख न टी० वी० में है, न खाने में है, न पीने में है, सुख तो आत्मा में है।

प्रश्न ५—व्यवहार सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—सात तत्त्वों का सच्चा श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है। हेय को हेय, उपादेय को उपादेय और ज्ञेय को ज्ञेय जानना।

प्रश्न ६—हेय, ज्ञेय, उपादेय किसे कहते हैं ?

उत्तर—हेय = छोड़ने योग्य।
ज्ञेय = जानने योग्य।
उपादेय = ग्रहण करने योग्य।

प्रश्न ७—हेय तत्त्व कौन से हैं ?

उत्तर—आस्रव और बन्ध तत्त्व हेय हैं।

प्रश्न ८—ज्ञेय तत्त्व कौन से हैं ?

उत्तर—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष सातों ज्ञेय हैं।

प्रश्न ९—उपादेय तत्त्व कौन से हैं ?

उत्तर—जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व उपादेय हैं।

प्रश्न १०—सम्यक्त्व उत्पत्ति के कारण कौन से हैं ?

उत्तर—सच्चे देव, गुरु और धर्म—ये सम्यक्त्व के कारण हैं।

प्रश्न ११—सच्चे देव, गुरु और धर्म कौन-कौन हैं ?

उत्तर—देव जिनेन्द्र—जिनेन्द्रदेव।
गुरु परिग्रहबिन—परिग्रह रहित साधु।
धर्म दयाजुत—दयामयी धर्म।

प्रश्न १२—जिनेन्द्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—चार घातिया कर्मों को जीतनेवाले परमात्मा को जिनेन्द्र कहते हैं।

प्रश्न १३—कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) उपादान कारण, (२) निमित्त कारण।

प्रश्न १४—उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वयं कार्यरूप परिणमें उसे उपादान कारण कहते हैं।

प्रश्न १५—निमित्त कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कार्य की उत्पत्ति में सहायक हो उसे निमित्त कारण कहते हैं।

प्रश्न १६—सम्यक्त्व के आठ अंग के नाम बताइये ?

उत्तर—(१) निशङ्कित, (२) निकांक्षित, (३) निर्विचिकित्सा, (४) अमूढ़दृष्टि, (५) उपगूहन, (६) स्थितिकरण, (७) वात्सल्य, (८) प्रभावना अंग ।

सम्यग्दर्शन के २५ दोष

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो ।
शङ्कादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित्त पागो ।।
अष्ट अंग अरु दोष पच्चीसों, तिन संक्षेपहु कहिये ।
बिन जानेतैं दोष गुणन को, कैसे तजिये गहिये ।।११।।

शब्दार्थ—मद = अहङ्कार । टारि = दूर कर । निवारि = हटकर । त्रिशठता = तीन मूढ़ता अथवा मूर्खता । षट् = छह । अनायतन = अधर्म के स्थान । चित्त = मन । गुणन = गुणों को । गहिये = ग्रहण करिये ।

अर्थ—आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, शङ्कादिक आठ दोष—इन पच्चीस दोषों को दूर कर प्रथम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य—इन गुणों में मन को लगाना चाहिये । आठ अंग और पच्चीस दोषों को संक्षेप में कहते हैं । क्योंकि बिना जाने दोषों को कैसे छोड़ सकते हैं और गुणों को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ।

प्रश्न १—मूढ़ता किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्म और सम्यक्त्व में दोषजनक अविवेकीपन के कार्य को मूढ़ता कहते हैं । ये तीन हैं—(१) देवमूढ़ता, (२) पाखण्डी मूढ़ता और (३) लोकमूढ़ता ।

प्रश्न २—देवमूढ़ता किसे कहते हैं ?

उत्तर—वरदान की इच्छा से राग-द्वेषयुक्त देवताओं की उपासना करना देवमूढ़ता है । अथवा—(१) सच्चे देव समझकर सरागी देवों की पूजा आदि करना । पीपल, चक्की आदि पूजना ।

प्रश्न ३—पाखण्डी मूढ़ता या गुरु मूढ़ता किसे कहते हैं ?

उत्तर—राग-द्वेषी, आरम्भ परिग्रह सहित और झूठे साधुओं की सेवा-सुश्रूषा, पूजा-भक्ति करना गुरु मूढ़ता है ।

प्रश्न ४—लोक मूढ़ता का लक्षण बताइए ?

उत्तर—धर्म समझकर बालू-पत्थरों आदि का ढेर लगाना, जलाशयों में स्नान करना, पर्वतादि ऊँचे स्थानों से गिरना लोक मूढ़ता या धर्म मूढ़ता है।

प्रश्न ५—अनायतन किसे कहते हैं, वे कितने हैं, नाम बताओ ?

उत्तर—अधर्म के स्थान को अनायतन कहते हैं, ये छह हैं—

(१) कुगुरु (२) कुदेव, (३) कुधर्म, (४) कुगुरु सेवक, (५) कुदेव सेवक और (६) कुधर्म सेवक।

प्रश्न ६—शंकादिक दोष कितने हैं व कौन से हैं ?

उत्तर—शंकादिक आठ दोष हैं—

(१) शंका, (२) कांक्षा, (३) विचिकित्सा,
(४) मूढ़दृष्टि, (५) अनुपगूहन, (६) अस्थितिकरण,
(७) अवात्सल्य और (८) अप्रभावना।

प्रश्न ७—सम्यक्त्व के गुण बताइए ?

उत्तर—सम्यक्त्व के ४ गुण हैं—

(१) प्रशम, (२) संवेग, (३) अनुकम्पा, (४) आस्तिक्य।

प्रश्न ८—इनके भिन्न-भिन्न लक्षण बताइए ?

उत्तर—(१) **प्रशम**—रागादि कषायों का उपशम प्रशम कहलाता है।
(२) **संवेग**—संसार, शरीर-भोगों से भय होना संवेग है।
(३) **अनुकम्पा**—प्राणीमात्र पर दया अनुकम्पा है।
(४) **आस्तिक्य**—पुण्य, पाप तथा परमात्मा के प्रति विश्वास आस्तिक्य कहलाता है।

प्रश्न ९—पच्चीस दोष व आठ अंगों को जानना आवश्यक क्यों हैं ?

उत्तर—"बिन जानेतें दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये" दोष और गुणों को जाने बिना गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग नहीं बन पाता है। अत: सम्यक्त्व के पच्चीस दोष और अंगों को जानना बहुत आवश्यक है।

आठ अंग

जिन वच में शंका न धार वृष, भव-सुख वांछा भानै ।
मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ।।
निजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निज धर्म बढ़ावै ।
कामादिक कर वृषते चिगते, निज पर को सुदिढ़ावै ।।१२।।
धर्मीसों गौ-बच्छ-प्रीतिसम, कर जिन-धर्म दिपावै ।
इन गुणतें विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै ।।

शब्दार्थ—वच = वचन । शंका = सन्देह । वृष = धर्म । भवसुख = संसार सुख । वांछा = इच्छा । मलिन = मैला । भान = त्याग करना चाहिए । घिनावै = ग्लानि करना । तत्त्व कुतत्त्व = साँचे-झूठे तत्त्व । पिछानै = पहचान करना । पर औगुण = दूसरे के दोष = ढाकै = छिपाना । वृषतैं = धर्म से । चिगते = डिगते हुए । दिढ़ावै = स्थिर करना । धर्मीसों = धर्मात्माओं से । गौ-बच्छ प्रीतिसम = गाय-बछड़े की प्रीति के समान । दिपावै = प्रकाशित करना । खिपावै = नष्ट करना ।

अर्थ—(१) जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए वचनों में संदेह नहीं करना **निशंकित** अंग है ।

(२) धर्म को धारण करके संसार के सुखों की वांछा (इच्छा) नहीं करना **निकांक्षित** अंग है ।

(३) मुनियों के मैले शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करना **निर्विचिकित्सा** अंग है ।

(४) साँचे और झूठे तत्त्वों की पहचान कर मूढ़ताओं में नहीं फँसना **अमूढ़दृष्टि** अंग है ।

(५) अपने गुणों को और पर के अवगुणों को प्रकट नहीं करना व अपने धर्म को बढ़ाना **उपगूहन** अंग है ।

(६) काम-विकार आदि के कारण धर्म से भ्रष्ट होते हुए को फिर से उसी में स्थिर कर देना **स्थितिकरण** अंग है ।

(७) अपने सहधर्मियों से बछड़े पर गाय के प्रेम के समान निष्कपट प्रेम करना **वात्सल्य** अंग है ।

(८) जैनधर्म का प्रचार करते हुए अपनी आत्मा को रत्नत्रय से सुशोभित करना (सजाना) **प्रभावना** अंग है। इनसे उल्टे आठ दोष होते हैं।

आठ मद

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै ।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै ।।१३।।
तप को मद न मद प्रभुता को, करै न सो निज जानै ।
मद धारै तो यही दोष वसु, समकित को मल ठानै ।।

शब्दार्थ—भूप = राजा। मातुल = मामा। नृप = राजा। ठानै = करना। प्रभुता = बड़प्पन, ऐश्वर्य। धारै = करता है। मल = दोष।

अर्थ—(१) पिता के राजा होने का (मद) घमण्ड करना = **कुलमद** है।
(२) मामा आदि के राजा होने का (मद) घमण्ड करना—**जातिमद** है।
(३) शरीर की सुन्दरता का घमण्ड करना—**रूपमद** है।
(४) अपने ज्ञान का अहङ्कार करना—**ज्ञानमद** है।
(५) अपनी धन-दौलत पर गर्व करना—**धनमद** है।
(६) अपनी ताकत का अभिमान करना—**बलमद** है।
(७) अपने उपवास, तप आदि का घमण्ड करना—**तपमद** है।
(८) अपनी आज्ञा मान्यता आदि का घमण्ड करना—**प्रभुतामद** है।

जो इन्हें नहीं करता वह अपनी आत्मा को जानता है। मद करने से यही आठ दोष सम्यग्दर्शन को मलिन कर देते हैं।

प्रश्न १—जाति किसे कहते हैं ?

उत्तर—माता के वंश को जाति कहते हैं।

प्रश्न २—कुल किसे कहते हैं ?

उत्तर—पिता के वंश को कुल कहते हैं।

प्रश्न ३—मद किसे कहते हैं ?

उत्तर—मद—अहङ्कार या घमण्ड को कहते हैं ।

छह अनायतन व तीन मूढ़ता

कुगुरु, कुदेव, कुवृष-सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है ।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करै है ।।१४।।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरु सेवक, कुदेव-सेवक एवं कुधर्म सेवक की प्रशंसा नहीं करता है । जिनदेव, निर्ग्रंथ जैन मुनि और जैनशास्त्र के सिवाय अन्य कुगुरु आदिक को नमस्कार भी नहीं करता है ।

स्पष्टीकरण—भय, आशा या स्नेह से कुदेवादि को नमस्कार करने पर ही सम्यक्त्व में दोष आता है । राजा, गुरु, माता-पिता को विनय करने में श्रावक को दोष नहीं है । विरोधी आदि को जबर्दस्ती से नमस्कार आदि करने में भी श्रद्धान नष्ट होने की आशङ्का नहीं करनी चाहिये ।

दोषरहित गुण सहित सुधी जे, सम्यक् दरश सजे हैं ।
चरितमोहवश लेश न संयम, पै सुरनाथ जजे हैं ।।
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जल तें भिन्न कमल है ।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ।।१५।।

शब्दार्थ—सुधी = बुद्धिमान । सजे = भूषित । चरितमोह = चारित्रमोहनीय कर्म । वश = निमित्त से । लेश = थोड़ा । संयम = व्रत । पै = परन्तु । सुरनाथ = इन्द्रादि देव । जजे हैं = पूजा करते हैं । गेही = गृहस्थी । गृह = घर । रचै = लीन होते हैं । ज्यों = जैसे । नगर-नारि = वेश्या । यथा = जैसे । कादे = कीचड़ । हेम = सोना । अमल = निर्मल, स्वच्छ ।

अर्थ—जो बुद्धिमान २५ दोषों से रहित, आठ गुणों सहित सम्यग्दर्शन से शोभायमान हैं, किन्तु चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से थोड़ा भी संयम धारण नहीं कर पाते हैं, तो भी इन्द्रादि देव उनकी पूजा करते हैं । वे यद्यपि घर में रहते हैं, गृहस्थ हैं, तो भी घर में लवलीन नहीं होते हैं । जैसे—कमल पानी में रहता हुआ भी पानी से अलग रहता है । कीचड़ में फँसा हुआ सोना भी निर्मल होता है । वेश्या का प्यार धन पर ही होता है । इसी

प्रकार सम्यग्दृष्टि घर में रहते हुए भी निर्मल रहता है, घर में आसक्त नहीं होता है तथा मोक्ष-मार्ग पर अपना लक्ष्य रखता है।

प्रश्न १—चारित्रमोह किसे कहते हैं ?

उत्तर—चारित्र का घातक मोहनीय कर्म चारित्रमोह है।

प्रश्न २—कौन-सा सम्यग्दृष्टि चारित्र रहित भी देवों के द्वारा पूजा जाता है ?

उत्तर—जो बुद्धिमान सम्यग्दृष्टि २५ दोषों से रहित है तथा ८ गुणों से सहित होता है वह चारित्र मोह के उदय से संयम धारण की इच्छा करता है पर संयम नहीं ले पाता, ऐसा महापुरुष देवों के द्वारा पूजा जाता है।

प्रश्न ३—सम्यग्दृष्टि की विशेषता बताइए ?

उत्तर—(१) सम्यग्दृष्टि देवों के द्वारा पूजा जाता है।

(२) जैसे जल में रहने पर भी कमल जल से अलग रहता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि घर में रहता हुआ भी गृहस्थी में लिप्त नहीं होता है।

(३) जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ सोना कीचड़ से भिन्न एवं निर्मल रहता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि गृहस्थी में रहता हुआ भी, घर के कार्यों को करता हुआ भी उसके दोषों से दूषित नहीं होता है।

(४) जैसे वेश्या का प्यार सिर्फ पैसे में होता है मनुष्य पर नहीं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव का प्रेम मोक्षमार्ग में ही होता है, गृहस्थी में नहीं होता है।

सम्यग्दृष्टि मरकर कहाँ-कहाँ पैदा नहीं होता ?

सर्वोत्तम सुख एवं सर्वधर्म का मूल

प्रथम नरक बिन षड् भू ज्योतिष, वान भवन षंढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी।।
तीन लोक तिहुँ काल माहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी।।१६।।

शब्दार्थ—प्रथम नरक = पहला नरक। षड् भू = छः पृथ्वी। ज्योतिष = ज्योतिषी देव। वान = व्यन्तर देव। भवन = भवनवासी देव। षंढ = नुपंसक। नारी = स्त्री। विकलत्रय = दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और

चतु इन्द्रिय। उपजत = उत्पन्न होता है। तिहुंकाल = तीनों काल। मूल = मुख्य, जड़, कारण।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम नरक को छोड़कर शेष छह नरकों में, भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी देवों में, स्त्री, नपुंसक, पशु, स्थावर विकलत्रय जीवों में उत्पन्न नहीं होता है। तीन लोक और तीनों कालों में सम्यग्दर्शन के समान सुखदायक कुछ नहीं है। यह सम्यग्दर्शन ही सब धर्मों का मूल है। सम्यग्दर्शन के बिना सब क्रियाएँ दुःखदायक हैं।

प्रश्न १—सम्यग्दृष्टि मरकर कहाँ-कहाँ पैदा होते हैं ?

उत्तर—(१) प्रथम नरक को छोड़कर नीचे के छह नरकों में नहीं जाते।
(२) भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों में नहीं जाते।
(३) तिर्यंच नहीं होते। विकलत्रय, स्थावर भी नहीं होते।
(४) स्त्री और नपुंसक भी नहीं होते हैं।
(यदि पूर्व में आयु बन्ध नहीं किया हो तो)

प्रश्न २—सर्वोत्तम सुख क्या है ?

उत्तर—"तीन लोक तिहुँ काल माहिं, नहिं दर्शन सो सुखकारी" सम्यग्दर्शन के बराबर कोई सुख तीन लोक, तीन काल में नहीं है।

प्रश्न ३—सम्पूर्ण धर्म का मूल क्या है ?

उत्तर—सम्पूर्ण धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। इसके अभाव में सारी क्रियाएँ भाररूप हैं मात्र दुःख का ही कारण है।

प्रश्न ४—धर्म क्या है ?

उत्तर—वस्तु का स्वभाव या गुण-धर्म है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन एवं अन्तिम उपदेश

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चारित्रा।
सम्यक्ता न लहै तो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

शब्दार्थ—मोक्ष महल = मोक्ष मंदिर । परथम = पहली । सीढ़ी = पैड़ी । सम्यक्ता = समीचीनपना । लहै = पाता है । भव्य = भव्यजीव । पवित्र = निर्दोष । 'दौल' = ग्रन्थकर्त्ता दौलतरामजी । चेत = सावधान हो । काल = समय । वृथा = बेकार । नरभव = मनुष्य पर्याय । कठिन = दुर्लभ ।

अर्थ—यह सम्यग्दर्शन मोक्षरूपी महल की पहली सीढ़ी है । इसके बिना ज्ञान और चारित्र सच्चे नहीं कहला सकते । इसलिए हे भव्य जीवो ! इस निर्दोष सम्यग्दर्शन को धारण करो । हे दौलतराम ! समझो, सुनो, चेतो । यदि तुम सयाने हो तो समय को व्यर्थ बरबाद मत करो । अगर सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तो इस मनुष्य पर्याय को पाना बहुत दुर्लभ है ।

प्रश्न १—मोक्ष महल की पहली सीढ़ी कौन-सी है और क्यों ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है क्योंकि सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान और चारित्र की कोई कीमत नहीं है । समीचीनता नहीं रहती है ।

प्रश्न २—ग्रन्थकर्त्ता कौन है ? उन्होंने किसे सम्बोधित किया है ?

उत्तर—ग्रन्थकर्त्ता पं० दौलतरामजी हैं, उन्होंने अपने-आपको सम्बोधित किया है ।

प्रश्न ३—मानव पर्याय में सम्यक्त्व नहीं प्राप्त किया तो क्या हानि है ?

उत्तर—फिर मानव पर्याय की प्राप्ति अत्यन्त कठिन हो जायेगी ।

◆

चतुर्थ ढाल

सम्यग्ज्ञान का लक्षण व समय

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान ।
स्वपर अर्थ बहु धर्म जुत, ज्यों प्रकटावन भान ।।

शब्दार्थ—सम्यक् = सच्चा । श्रद्धा = दर्शन । पुनि = बाद में । सेवहु = धारण करो । सम्यग्ज्ञान = सच्चा ज्ञान । स्वपर अर्थ = स्व और पर पदार्थ । बहुधर्म जुत = अनेक धर्मों से युक्त । ज्यों = जैसे । प्रकटावन = प्रकाशित करने वाला । भान = सूर्य ।

अर्थ—सम्यक्दर्शन धारण करने के बाद सम्यग्ज्ञान को धारण करना चाहिए । क्योंकि वह सम्यग्ज्ञान अनेक धर्मों से सहित स्व और पर-पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए सूर्य के समान है ।

प्रश्न १—सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनेक धर्मात्मक स्व और पर पदार्थों को ज्यों-का-त्यों जानने वाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान है ।

प्रश्न २—स्व पदार्थ कौन से हैं ?

उत्तर—जीव और मोक्ष स्वपदार्थ है शेष पर पदार्थ हैं ।

प्रश्न ३—सम्यग्ज्ञान के भेद बताइए ?

उत्तर—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन:पर्ययज्ञान और (५) केवलज्ञान ।

प्रश्न ४—सम्यग्ज्ञान को सूर्य की उपमा क्यों दी ?

उत्तर—जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही अन्धकार निकल जाता है, उसी प्रकार समीचीन ज्ञान का प्रकाश होते ही अज्ञान-अन्धकार भाग जाता है तथा सूर्य के प्रकाश में सभी पदार्थ जैसे-के तैसे दिखते हैं, उसी प्रकार ज्ञान-सूर्य के प्रकाश में पदार्थों का वास्तविक रूप जैसे-का-तैसा झलकने लगता है । सूर्य और ज्ञान दोनों ही 'तमनाशक हैं', एक अन्तरतम का नाश करता है, दूसरा बाह्यतम का नाश करता है ।

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधो ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहूँ में भेद अबाधो ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई ।
युगपत् होते हूँ, प्रकाश दीपक तें होई ।।१।।

शब्दार्थ—सम्यक् साथै = सम्यग्दर्शन के साथ । अराधो = कहा गया । श्रद्धा = श्रद्धान करना । जान = जानना । दुहू = दोनों । अबाधो = बाधारहित । कारज = कार्य । युगपत् = एकसाथ । होते हूँ = होने पर भी । प्रकाश = उजाला । दीपक तें = दीपक की ज्योति से ।

अर्थ—यद्यपि सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है तो भी दोनों में भेद है, दोनों जुदा-जुदा हैं । क्योंकि सम्यग्दर्शन का लक्षण श्रद्धान करना और सम्यग्ज्ञान का लक्षण जानना है । सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है । दोनों के एकसाथ होने पर भी दोनों में भेद है । जैसे एकसाथ होने पर भी उजाला दीपक से ही उत्पन्न होता है ।

प्रश्न १—सम्यग्दर्शन या ज्ञान एकसाथ होते हैं या भिन्न-भिन्न ?

उत्तर—"सम्यक् साथै ज्ञान होय" दोनों एकसाथ होते हैं फिर भी दोनों अलग-अलग हैं । दोनों में अन्तर है ।

प्रश्न २—सम्यग्दर्शन और ज्ञान में अन्तर बताइए ?

उत्तर—(१) सम्यग्दर्शन का लक्षण श्रद्धा है, सम्यग्ज्ञान का लक्षण जानना है, (२) सम्यग्दर्शन कारण है, सम्यग्ज्ञान कार्य है ।

प्रश्न ३—दर्शन और ज्ञान की भिन्नता उदाहरण देकर समझाइए ?

उत्तर—जिस प्रकार दीपक का जलना और प्रकाश का होना दोनों एकसाथ होते हैं फिर भी दीप अलग है, प्रकाश अलग है, दीप का जलना कारण है, प्रकाश कार्य है, इसी प्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में भी जानना चाहिए ।

सम्यग्ज्ञान के भेद एवं प्रत्यक्ष का लक्षण

तासभेद दो हैं परोक्ष परतछि तिन माहीं ।
मतिश्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतें उपजाहीं ।।
अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देश-प्रतच्छा ।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जानैं जिय स्वच्छा ।।२।।

शब्दार्थ—तास = उस सम्यग्ज्ञान । परोक्ष = इन्द्रिय सापेक्ष । परतछि = प्रत्यक्ष इन्द्रिय निरपेक्ष । तिनमाहीं = उनमें । अक्ष = इन्द्रिय । दोय = दोनों । उपजाहीं = उत्पन्न होते हैं । देश-प्रतच्छा = एक देश प्रत्यक्ष । द्रव्य = पदार्थ । क्षेत्र = स्थान । परिणाम = सीमा । जिय = जीव । स्वच्छा = स्पष्ट ।

अर्थ—उस सम्यग्ज्ञान के भी दो भेद हैं—(१) परोक्ष, (२) प्रत्यक्ष ।

परोक्ष—जो इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होता है वह परोक्षज्ञान है । मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं ।

देश-प्रत्यक्ष—जिससे जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लेकर रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है वह देश प्रत्यक्षज्ञान है । अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान देश प्रत्यक्ष हैं ।

प्रश्न १—प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—बिना किसी के निमित्त से होनेवाला ज्ञान प्रत्यक्ष है ।

प्रश्न २—मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रिय और मन की सहायता से वस्तु को जाननेवाला ज्ञान मतिज्ञान कहलाता है ।

प्रश्न ३—श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—मतिज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थ के विशेष रूप से जाननेवाला ज्ञान श्रुतज्ञान है ।

प्रश्न ४—अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा सहित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाननेवाला ज्ञान अवधिज्ञान है ।

प्रश्न ५—मन:पर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से मन में स्थित सरल और जटिल पदार्थों को जाननेवाला ज्ञान मन:पर्ययज्ञान है ।

प्रश्न ६—केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—छहों द्रव्यों की तीनों कालों और तीनों लोकों में होनेवाली समस्त पर्यायों को एकसाथ दर्पण के समान स्पष्ट जाननेवाला ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है ।

सकल प्रत्यक्ष का लक्षण व ज्ञान-महिमा

सकल द्रव्य के गुण अनन्त परजाय अनन्ता ।
जानै एकै काल, प्रकट केवलि भगवन्ता ।।
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन ।
इहि परमामृत जन्म-जरा-मृत रोग निवारन ।।३।।

शब्दार्थ—गुण = सहभावी । पर्याय = क्रमभावी । एकै काल = एकसाथ । प्रगट = प्रत्यक्ष । केवलि भगवन्ता = केवली भगवान । ज्ञान समान = ज्ञान के बराबर । आन = दूसरा । परमामृत = उत्कृष्ट अमृत । जरा = बुढ़ापा । मृत = मृत्यु । निवारन = नाश करनेवाला ।

अर्थ—सम्पूर्ण द्रव्यों के अनन्त गुण और पर्यायों को केवली भगवान एक ही साथ प्रत्यक्ष जानते हैं । संसार में ज्ञान के बराबर दूसरा कोई पदार्थ सुख देनेवाला नहीं है । यह सम्यग्ज्ञान ही जन्म-जरा-मृत्युरूपी रोगों को नष्ट करने के लिए उत्कृष्ट अमृत के समान है ।

प्रश्न १—द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो गुण और पर्याय सहित हो, वह द्रव्य है ।

प्रश्न २—गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो द्रव्य के साथ-साथ सदैव रहते हैं, वे गुण कहलाते हैं ।

प्रश्न ३—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्याय क्रमभावी होती हैं अथवा गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं ।

प्रश्न ४—केवली भगवान किनको कहते हैं ?

उत्तर—वीतराग, सर्वज्ञ हितोपदेशी अरहन्त भगवान को केवली भगवान कहते हैं ।

प्रश्न ५—परम अमृत क्या है ?

उत्तर—सम्यग्ज्ञान जन्म-जरा-मृत्युरूपी रोगों का नाशक परम अमृत है ।

प्रश्न ६—ताप या रोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीन रोग—(१) जन्म, (२) जरा, (३) मृत्यु ।

प्रश्न ७—जगत में सुख का कारण क्या है ?

उत्तर—''ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण'
समस्त सुखों का मूल कारण सम्यग्ज्ञान है ।

ज्ञानी व अज्ञानी के कर्मनाश में अन्तर

कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान, बिन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानी के छिनमाहिं, त्रिगुप्ति तें सहज टरैं ते ।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो ।।४।।

शब्दार्थ—कोटि = करोड़ । तपैं = तप करने से । ज्ञान बिन = बिना ज्ञान के । झरैं = नष्ट होते हैं । छिन में = क्षणभर में । त्रिगुप्ति = मन, वचन, काय का निरोध । सहज = बिना प्रयत्न के । टरैं = दूर होते हैं । मुनिव्रत = महाव्रत । ग्रीवक = सोलह स्वर्ग से ऊपर, ऊपर के विमान । उपजायो = उत्पन्न हुआ । आतमज्ञान = स्वानुभव । लेश = थोड़ा भी ।

अर्थ—अज्ञानी जीव के सम्यग्ज्ञान के बिना करोड़ों भवों तक तपश्चरण करने पर जितने कर्म नष्ट होते हैं, उतने कर्म ज्ञानी जीव के मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकने से क्षणभर में सरलता से नष्ट हो जाते हैं । यह जीव मुनियों के व्रत धारण कर अनेक बार नवमें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हुआ परन्तु अपनी आत्मा का ज्ञान न होने से लेशमात्र भी सुख प्राप्त नहीं कर सका ।

प्रश्न १—गुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकना गुप्ति है ।

प्रश्न २—ज्ञानी और अज्ञानी में क्या अन्तर है ?

उत्तर—अज्ञानी तप करने से जितने कर्मों की निर्जरा करोड़ वर्षों में करता है, ज्ञानी मन, वचन, काय को वश में करता हुआ उतने ही कर्मों की निर्जरा एक समय मात्र में कर देता है ।

प्रश्न ३—मुनि व्रतों को अनन्त बार धारण कर नौ ग्रैवेयक तक कौनसा जीव जाता है ?

उत्तर—अभव्य जीव ही द्रव्यलिंगी (दिगम्बर भेष) मुनि बनकर

महाव्रतों को निरतिचार पालन करके अनन्त बार नवें ग्रैवेयक में उत्पन्न हो सकता है।

प्रश्न ४—द्रव्यलिंगी मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव बाह्य में दिगम्बर मुद्रा को धारण कर महाव्रतादि का पालन करता है परन्तु उनके रत्नत्रय रूप भेद-विज्ञान की सिद्धि नहीं हुई हो उसे द्रव्यलिंगी मुनि कहते हैं।

प्रश्न ५—अभव्य जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस जीव को महाव्रत रूप धर्म का संयोग मिलने पर भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को प्रकट करने की योग्यता नहीं होती है जैसे बन्ध्या स्त्री, ठर्रा मूँग।

प्रश्न ६—क्या भव्य जीव अनन्त बार मुनिव्रत ग्रहण नहीं कर सकता है ?

उत्तर—नहीं! क्योंकि भव्य जीव को इस प्रकार के महाव्रतों का संयोग मिलने पर उसे सिद्धावस्था मिले बिना नहीं रहेगी। हाँ इतना अवश्य है कि भव्य जीव ३२ बार तक भावलिंगी मुनि बन सकता है इससे सिद्ध होता है कि भव्य जीव अनन्त बार मुनिव्रतों को धारण नहीं करता।

प्रश्न ७—भावलिंगी मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस भव्य जीव ने बाह्य में दिगम्बर मुद्रा धारण करके अंतरंग में रत्नत्रय की शक्ति को भेद-विज्ञान द्वारा प्रकट कर लिया है अथवा जिन्हें स्वात्म तत्त्व का अनुभव हो गया हो उन्हें भावलिंगी मुनि कहते हैं।

प्रश्न ८—भावलिंगी मुनि की पहचान क्या है ?

उत्तर—भावलिंगी मुनि की पहचान केवलीगम्य है।

प्रश्न ९—भावलिंगी मुनि के भेद व लक्षण बताइए ?

उत्तर—भावलिंगी मुनि के पाँच भेद हैं—(१) पुलाक, (२) बकुश, (३) कुशील, (४) निर्ग्रन्थ और (५) स्नातक।

पुलाक—जो उत्तर गुणों की भावना से रहित हो तथा किसी क्षेत्र व काल में मूल में भी दोष लगावें, उन्हें पुलाक कहते हैं।

बकुश—जो मूल गुणों का तो निर्दोष पालन करते हों परंतु अपने

शरीर व उपकरण आदि की शोभा बढ़ाने की कुछ इच्छा रखते हों, उन्हें बकुश कहते हैं।

कुशील—मुनि दो प्रकार के होते हैं—एक प्रतिसेवनाकुशील और दूसरे कषायकुशील।

प्रतिसेवनाकुशील—जिनके उपकरण तथा शरीरादि से विरक्तता न हो और मूलगुण तथा उत्तरगुण की परिपूर्णता है, परन्तु उत्तरगुणों में कुछ विराधना दोष हों, उन्हें प्रतिसेवनाकुशील कहते हैं।

कषायकुशील—जिन्होंने संज्वलन के सिवाय अन्य कषायों को जीत लिया है, उन्हें कषायकुशील कहते हैं।

निर्ग्रन्थ—जिनका मोहकर्म क्षीण हो गया हो ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

स्नातक—समस्त घातिया कर्मों का नाश करनेवाले केवली भगवान स्नातक कहलाते हैं।

प्रश्न १०—ग्रैवेयक क्या है ?

उत्तर—सोलह स्वर्गों से ऊपर के अहमिन्द्रों के नौ स्थान नव ग्रैवेयक कहलाते हैं।

तातें जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजे।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजै॥
यह मानुष-पर्याय, सुकुल सुनिवो जिनवानी।
इहविध गये न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥५॥

शब्दार्थ—जिनवर = जिनेन्द्र भगवान। कथित = कहे हुए। तत्त्व = जीवादि पदार्थ। अभ्यास = पठन-पाठन। करीजै = करना चाहिये। संशय = सन्देह। विभ्रम = विपर्यय। मोह = अनध्यवसाय। आपो = आत्मा को। लख लीजै = पहचानना चाहिये। मानुष पर्याय = मनुष्य भव। सुकुल = उत्तम कुल। सुनिवो = सुनना। जिनवानी = जैनशास्त्र। इहविध = इस प्रकार। सुमणि = चिन्तामणि रत्न। उदधि = समुद्र। समानी = गिरी हुई।

अर्थ—इसलिए जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए जीवादि पदार्थों पर

विश्वास करना चाहिए। संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय को छोड़कर आत्मा के स्वरूप को पहचानना चाहिये। यह मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, जिनवाणी का सुनना ये तीनों व्यर्थ चले गये तो फिर समुद्र में डूबी उत्तम मणि के समान इन तीनों का योग मिलना कठिन है।

प्रश्न १—ज्ञानी बनने के लिए क्या करना चाहिये ?

उत्तर—"जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजै।" जिन भगवान द्वारा कहे गये तत्त्व के आगम का अभ्यास करना चाहिये।

प्रश्न २—आत्मा के स्वरूप को किस प्रकार पहचानें ?

उत्तर—"संशय—विभ्रम मोह त्याग" संशय, विभ्रम और मोह को त्याग कर अपनी आत्मा को पहचानना चाहिये।

प्रश्न ३—संशय, विभ्रम और मोह का स्वरूप बतलाइए ?

उत्तर—संशय विरुद्ध अनेक कोटि का अवलम्बन करनेवाला ज्ञान संशय है जैसे—यह सीप है या चाँदी।

विभ्रम (विपर्यय)—उल्टा ज्ञान, जैसे—सीप को चाँदी और चाँदी को सीप जानना।

मोह (अनध्यवसाय) कुछ है (संज्ञाहीन या सान) ऐसा निश्चय रहित ज्ञान।

प्रश्न ४—एक बार खोने के बाद कौन-कौन-सी चीज मिलना कठिन है ?

उत्तर—जिस प्रकार समुद्र में मणि गिरने पर मिलना कठिन है उसी प्रकार एक बार खोने के बाद—(१) मनुष्य पर्याय
(२) उत्तम कुल
(३) जिनवाणी का सुनना पुनः मिलना अत्यन्त कठिन है।

प्रश्न ५—ज्ञान के दोष कितने हैं ?

उत्तर—(१) संशय, (२) विपर्यय और (३) अनध्यवसाय।

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान को कारन, स्वपर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनौ॥६॥

शब्दार्थ—समाज = कुटुम्ब । गज = हाथी । बाज = घोड़ा । राज = प्रभुता । काज = काम । अचल = स्थिर । रहावै = हो जाती है । स्वपर = अपना और पराया । विवेक = ज्ञान । बखानौ = कहा गया है । उपाय = प्रयत्न । बनाय = बना करके ।

अर्थ—धन-कुटुम्बी, नौकर-चाकर, हाथी-घोड़ा, राज्य आदि कोई भी अपने काम में नहीं आते हैं । ज्ञान जो अपनी आत्मा का स्वरूप है उसके हो जाने पर यह आत्मा स्थिर हो जाती है । उस सम्यग्ज्ञान का कारण अपना और पर का भेद ज्ञान कहा गया है । इसलिए हे भव्य जीवो ! करोड़ों उपाय द्वारा भी उस सम्यग्ज्ञान को हृदय में धारण करो ।

प्रश्न १—सम्यग्ज्ञान का मूल कारण कौन है ?

उत्तर—"स्व-पर विवेक"—भेदज्ञान उस सम्यग्ज्ञान का कारण है ।

प्रश्न २—सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति की महिमा क्या है ?

उत्तर—"कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो" धन, समाज, परिवार, हाथी-घोड़ा सभी क्षणभंगुर हैं । एकमात्र ज्ञान ही शाश्वत है इसलिए भव्यजीवों को करोड़ों उपाय करके भी उस ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये ।

जे पूरब शिव गये, जाँहि अरु आगे जै है ।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं ।।
विषय-चाह दव-दाह, जगतजन अरनि दझावै ।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै ।।७।।

शब्दार्थ—पूरब = पहले । जाँहि = जा रहे हैं । आगे = भविष्य में । जैहैं = जायेंगे । सो = वह । महिमा = महत्त्व । ज्ञानतनी = ज्ञान संबंधी । मुनिनाथ = गणधरादि पुरुष । दव-दाह = दावानल (जंगल की अग्नि) । आन = दूसरा । घनघान = मेघों का समूह । बुझावै = शांत करता है ।

अर्थ—जो पहले मोक्ष गये, आगे भविष्य में जायेंगे यह सब सम्यग्ज्ञान का प्रभाव है । ऐसा गणधरादि श्रेष्ठ पुरुष कहते हैं । विषयों की चाहरूपी भयङ्कर दावाग्नि संसार जीवरूपी जंगल को जला रहा है उसकी शांति का दूसरा उपाय नहीं है । केवलज्ञानरूपी मेघों का समूह ही उसे बुझा सकता है ।

प्रश्न १—पूर्व में जो मुक्त हुए, आगे जो होंगे उसका कौन-सा कारण है ?

उत्तर—“सो सब महिमा ज्ञान तनी” जितने भी जीव पहले मुक्त हुए, आगे मोक्ष जावेंगे यह सब ज्ञान की ही महिमा जाननी चाहिये।

प्रश्न २—विषयों की चाहरूपी अग्नि को शांत करने का उपाय बताइये ?

उत्तर—“ज्ञान घनधान बुझावै” विषय की चाहरूपी भयङ्कर अग्नि को शांत करने का उपाय “ज्ञानरूपी मेघों का समूह” है।

प्रश्न ३—वर्तमान में जीवों ने ज्ञान के बल पर जितनी उन्नति की है वह मुक्ति का साधक है या नहीं ?

उत्तर—ज्ञान बहुत हो उसकी मोक्षमार्ग में कीमत नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित, रागरहित सम्यग्ज्ञान मुक्ति का साधक है। थोड़े ज्ञान से मुक्ति होगी पर रागरहित हो। राग सहित बहुत ज्ञान भार है, डुबोने वाला है।

पुण्य पाप फल माहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपज विनशै फिर थाई॥
लाख बात की बात यहै, निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दंद फंद, नित आतम ध्याओ॥८॥

शब्दार्थ—पुण्य = धर्म (सत्य कर्म)। पाप = अधर्म (अशुभ कार्य)। फलमाहिं = फलों में। हरख = हर्ष (आनन्द)। बिलखौ = दुःख। उपज = उत्पन्न होकर। विनशै = नष्ट होती है। फिर थाई = फिर पैदा होती है। यहै = यही। जग दंद फंद = संसार के झगड़ों को। तोरि = तोड़कर। नित = हमेशा। ध्याओ = ध्यान करो।

अर्थ—हे भाई! पुण्य-पाप के फलों में हर्ष-विषाद मत करो। क्योंकि यह पुण्य और पाप पुद्गल की पर्याय हैं। उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं। फिर उत्पन्न होते हैं। अपने मन में इस बात का निश्चय करो। लाखों बातों का सार यही है तथा संसार की सम्पूर्ण बातों को छोड़कर हमेशा अपनी आत्मा का ध्यान करो।

प्रश्न १—पुण्य का फल क्या है ?

उत्तर—पुण्य का फल अरहंत पद की प्राप्ति है।

पुण्यभला अरहन्ता

प्रश्न २—पाप का फल क्या है ?

उत्तर—पाप का फल नरक व तिर्यञ्चगति एवं दरिद्रता आदि हैं।

प्रश्न ३—पुद्गल किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जिसमें पूरण और गलन होता है उसे पुद्गल कहते हैं।

(२) जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाया जाय उसे पुद्गल कहते हैं।

प्रश्न ४—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—परिणमन को पर्याय कहते हैं।

प्रश्न ५—गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो द्रव्य के सब भाग और सब हालतों में सदा रहता है, उसे गुण कहते हैं।

प्रश्न ६—लाख बातों की एक बात क्या है ?

"तोरि सकल जग दंद-फंद नित आतम ध्यावो"

उत्तर—संसार के सारे झगड़ों को छोड़कर प्रतिदिन अपनी आत्मा का ध्यान करना चाहिये।

सम्यक्चारित्र धारण का समय, भेद व अहिंसा सत्याणुव्रत का लक्षण

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दिढ़ चारित लीजै।
एक देश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।।
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न संघारै।
पर वधकार कठोर निन्द्य, नहिं वयन उचारै।।१।।

शब्दार्थ—होय = होकर। बहुरि = पीछे। दिढ़ = अटल। चरित = सम्यक्चारित्र। लीजै = पालन करना चाहिये। कहीजै = कहे गये हैं।

वृथा = व्यर्थ । थावर = स्थावर । संघारै = विघात करना । वधकार = मर्मभेदी । निन्द्य = निन्दा योग्य । वयन = वचन । उचारै = कहना ।

अर्थ—सम्यग्ज्ञानी बनकर फिर सम्यक्‌चारित्र को धारण करना चाहिये । उसके एकदेश और सकलदेश ऐसे दो भेद हैं । त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करके प्रयोजन स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों की भी हिंसा नहीं करना अहिंसाणुव्रत है । दूसरे जीवोंको दु:खदायक-घातक, कड़े, निन्दा-योग्य वचन नहीं कहना सत्याणुव्रत है ।

प्रश्न १—सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के बाद हमारा क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर—"सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि दिढ़ चारित लीजै"

सम्यग्ज्ञानी बनकर दृढ़ चारित्र धारण करना मानव का कर्त्तव्य है ।

प्रश्न २—चारित्र के भेद बताइये ?

उत्तर—चारित्र के दो भेद हैं—(१) एकदेश चारित्र, (२) सकलदेश चारित्र ।

प्रश्न ३—एकदेश चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—श्रावक के चारित्र को एकदेश चारित्र कहते हैं ।

प्रश्न ४—सकलदेश चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—मुनियों के चारित्र को सकलदेश चारित्र कहते हैं ।

प्रश्न ५—अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—पाँचों पापों का स्थूल रूप से त्याग अणुव्रत है ।

प्रश्न ६—महाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—हिंसादि पाँचों का सर्वथा त्याग करना महाव्रत है ।

प्रश्न ७—व्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—अच्छे कामों को करने का नियम करना और बुरे कामों को छोड़ना व्रत कहलाता है ।

प्रश्न ८—अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करके बिना प्रयोजन स्थावर जीवों की भी हिंसा नहीं करना अहिंसाणुव्रत है ।

प्रश्न ९—सत्याणुव्रत का लक्षण बताइए ?

उत्तर—स्थूल झूठ का त्याग करना तथा दूसरे जीवों को दुःखदायक, घातक, कड़े, निन्द्य, अयोग्य वचन नहीं कहना सत्याणुव्रत है।

प्रश्न १०—अहिंसाणुव्रती की विशेषता बताइए ?

उत्तर—अहिंसाणुव्रती किसी भी जीव को संकल्पपूर्वक नहीं मारता है। किन्तु आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं होता है।

प्रश्न ११—हिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रमाद और कषाय के निमित्त से जहाँ स्व-पर के प्राणों का घात किया जाता है वहाँ हिंसा कहलाती है। प्रमाद और कषाय के अभाव में प्राणघात होने पर भी हिंसा का दोष नहीं लगता है।

प्रश्न १२—हिंसा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१)—संकल्पी, (२) आरम्भी, (३) उद्योगी, (४) विरोधी या द्रव्यहिंसा, भावहिंसा।

जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल, नारि सों रहै विरत्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरौ राखै।
दशदिश गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै।।१०।।

शब्दार्थ—मृतिका = मिट्टी। गहे = लेना। अदत्ता = बिना दी हुई। निज = अपनी। वनिता = स्त्री। नारि सों = स्त्रियों से। विरत्ता = अलग, दूर रहना। शक्ति = सामर्थ्य। विचार = सोचकर। थोरौ = थोड़ा। परिग्रह = आडम्बर। राखै = रखना। दशदिश = दशों दिशा। गमन = जाना। प्रमाण = मर्यादा। ठान = रखकर। तसु = उस। सीम = मर्यादा। न नाखै = नहीं लाँघना।

अर्थ—(१) जल और मिट्टी के अलावा अन्य कोई वस्तु बिना दी हुई लेना **अचौर्याणुव्रत** है।

(२) अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों से विरक्त रहना **ब्रह्मचर्याणुव्रत** है।

(३) अपनी शक्ति का विचार करते हुए थोड़ा परिग्रह रखना **परिग्रह-परिमाण** अणुव्रत है।

(४) दसों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा करके फिर उस सीमा का उल्लंघन नहीं करना **दिग्व्रत** है।

प्रश्न १—दिग्व्रत क्या है ?

उत्तर—दिग्व्रत-गुणव्रत का एक भेद है।

प्रश्न २—गुणव्रत किसे कहते हैं ? इनके कितने भेद हैं ?

उत्तर—अणुव्रत और मूलगुणों को दृढ करनेवाले व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। इनके तीन भेद हैं—(१) दिग्व्रत, (२) देशव्रत, (३) अनर्थदण्डव्रत।

प्रश्न ३—दस दिशाओं के नाम बताओ ?

उत्तर—दस दिशाएँ—(१) पूर्व, (२) पश्चिम, (३) उत्तर, (४) दक्षिण, (५) ईशान, (६) वायव्य, (७) नैऋत्य, (८) आग्नेय, (९) ऊर्ध्व और (१०) अधः।

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण ठान, अन सकल निवारा।।
काहू की धन हानि, किसी जय-हार न चिन्तै।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनज कृषीतैं।।११।।

शब्दार्थ—ताहू में = दिग्व्रत में। बाग = बगीचा। बजारा = बाजार। गमनागमन = आना-जाना। अन = अन्य। निवारा = त्यागना। काहू = किसी। जय = जीत। हानि = नुकसान। हार = पराजय। चिन्तै = चिन्तवन करना। देय = देना। अघ = पाप। बनज = व्यापार। कृषी = खेती।

अर्थ—दिग्व्रत में की हुई मर्यादा के भीतर किसी गाँव, गली, घर, बाग, बाजार तक नियत समय के लिए आने-जाने का प्रमाण करके उसके बाहर नहीं जाना देशव्रत है।

(१) किसी के धन की हानि, किसी की जीत, किसी की हार होने का चिन्तवन नहीं करना अपध्यान नामक अनर्थदण्डव्रत है।

(२) जिसमें ज्यादा पाप बन्ध होता है ऐसी खेती, व्यापार आदि के करने का उपदेश नहीं देना सो पापोपदेश नामक अनर्थदण्डव्रत है।

प्रश्न १—अनर्थदण्डव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) बिना प्रयोजन मन, वचन, काय की अशुभ प्रवृत्ति का त्याग करना अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।

अथवा

(२) बिना प्रयोजन जो भी कार्य किया जाता है वह अनर्थदण्डव्रत है।

प्रश्न २—अनर्थदण्ड के कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) पापोपदेश, (२) हिंसा दान, (३) अपध्यान, (४) दुःश्रुति, और (५) प्रमादचर्या।

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरण, नहिं दे यश लाधै।।
राग-द्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथदण्ड हेतु, अघ तिन्हें न कीजै।।१२।।

अर्थ—(१) आलस्य के वश होकर पृथ्वी, पानी, आग, पेड़ आदि को नष्ट नहीं करना प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्डव्रत है।

(२) तलवार, धनुष, हल आदि हिंसा के साधनों को देकर यश नहीं कमाना हिंसा-दान नामक अनर्थदण्डव्रत है।

(३) राग-द्वेष को उत्पन्न करनेवाली कथाओं को कभी नहीं सुनना दुःश्रुति नामक अनर्थदण्डव्रत है।

और भी दूसरे जितने अनर्थदण्ड के कारण ऐसे पाप हैं उनको कभी नहीं करना चाहिये।

प्रश्न १—विकथा के भेद बताइए ?

उत्तर—(१) स्त्री-कथा, (२) भोजन-कथा, (३) देश-कथा और (४) राज-कथा।

शिक्षा व्रत

धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये ।
पर्व चतुष्टय माहिं, पाप तज प्रोषध धरिये ।।
भोग और उपभोग, नियम कर ममतु निवारै ।
मुनि को भोजन देय, फेर नित करहि अहारै ।। १ ३ ।।

शब्दार्थ—उर = हृदय । समताभाव = राग-द्वेष का अभाव । धर = धारण करके । सामायिक = आत्मध्यान । करिये = करना चाहिए । पर्व = पवित्र दिन । चतुष्टय = चार दिन (दो अष्टमी, दो चतुर्दशी) । प्रोषध = उपवास (एकासन सहित उपवास) । भोग = जो एक बार भोगने में आवे । उपभोग = बार-बार भोगने में आवे । नियम = मर्यादा । ममतु = मोह, ममता । निवारै = दूर करना । फेर = बाद में । मुनि = दिगम्बर साधु । अहारै = भोजन ।

अर्थ—(१) हृदय में समताभाव धारण करके हमेशा आत्मध्यान करना **सामायिक** शिक्षाव्रत है ।

(२) एक माह के चार पर्वों में पाप-कार्यों का त्याग करके प्रोषध करना **प्रोषधोपवास** है ।

(३) भोग और उपभोग की वस्तुओं का नियम करके उनमें ममत्व का त्याग करना **देशावकाशिक** शिक्षाव्रत है ।

(४) दिगम्बर साधुओं, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक एवं त्यागी व्रतियों व साधर्मियों को भोजन देकर फिर स्वयं आहार करना वैय्यावृत्त नामक **शिक्षाव्रत** है । इसी को अतिथिसंविभाग व्रत भी कहते हैं ।

प्रश्न १—शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—मुनिव्रत पालने की शिक्षा देनेवाले व्रत शिक्षाव्रत कहलाते हैं ।

प्रश्न २—शिक्षाव्रत के कितने भेद हैं ?

उत्तर—शिक्षाव्रत के चार भेद हैं—(१) सामायिक, (२) प्रोषधोपवास (३) भोगोपभोगपरिमाण और (४) अतिथिसंविभाग ।

प्रश्न ३—भोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो एक बार ही काम में आ सकनेवाली वस्तु है, जैसे—भोजन आदि भोग है ।

प्रश्न ४—उपभोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—बार-बार काम में आनेवाली वस्तुएँ, जैसे—वस्त्रादि उपभोग कहलाती हैं ।

बारह व्रत के अतीचार, पन-पन न लगावै ।
मरण समय संन्यास धार, तसु दोष नशावै ।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै ।
तहँतैं चय नर-जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै ।।१४।।

शब्दार्थ—अतीचार = दोष । पन = पाँच । संन्यास = समाधि । नशावै = नष्ट करना । श्रावक = पंचम गुणस्थानवर्ती व्रती । सोलम = सोलहवें । उपजावै = पैदा होना । चय = मरकर । शिव जावै = मोक्ष जाता है ।

अर्थ—जो बारह व्रतों की पाँच-पाँच अतीचार को नहीं लगाते हुए पालता है और अन्त समय समाधिमरण धारण कर उसके दोषों को दूर करता है वह इस प्रकार श्रावक के व्रतों को पालन कर सोलहवें स्वर्गपर्यन्त पैदा होता है । वहाँ से आकर मनुष्य भव धारण कर मुनि होकर मोक्ष जाता है ।

प्रश्न १—अतीचार किसे कहते हैं ?

उत्तर—व्रत का एकदेश भंग होना अतीचार है ।

प्रश्न २—बारह व्रत कौन से हैं ?

उत्तर—५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत कुल १२ व्रत होते हैं ।

प्रश्न ३—संन्यास किसे कहते हैं ?

उत्तर—उपसर्ग आने पर, दुर्भिक्ष पड़ने पर, बुढ़ापा होने पर, असाध्य रोग जिसका कोई प्रतिकार नहीं हो ऐसा होने पर धर्म के लिए शरीर का त्याग करना, समाधि या सल्लेखना की जाती है । कषाय सल्लेखनापूर्वक काय सल्लेखना की जाती है ।

प्रश्न ४—मुनि के भेद कितने हैं ?

उत्तर—(१) भावलिंगी और (२) द्रव्यलिंगी ।

प्रश्न ५—मुनि की बाह्य पहचान क्या है ?

उत्तर—(१) पिच्छी-कमण्डलु, (२) नग्नता, (३) केशलोंच, (४) संस्कार रहित शरीर और (५) खड़े-खड़े आहार लेना । (हाथों में) । (६) पैदल विहार ।

प्रश्न ६—पात्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर—तीन—(१) उत्तम (२) मध्यम और (३) जघन्य।

प्रश्न ७—श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) "शृणोति इति श्रावकः" जो हित की बात को सुनता है, वह श्रावक है। अथवा—

(२) शृणोति साधु वाक्यानि, व्रतानि धारयन्ति च।
करोति शुभ कर्माणि, श्रावकस्तद्विधीयते॥

जो साधुओं के वाक्यों को सुनते हैं, व्रतों को धारण करते हैं और शुभ कर्मों को करते हैं वे श्रावक कहलाते हैं।

अथवा

(३) जो श्रद्धावान, विवेकवान व क्रियावान हो वह श्रावक कहलाता है।

प्रश्न ८—श्रावक के कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) पाक्षिक, (२) नैष्ठिक और (३) साधक।

●

पंचम ढाल

भावनाओं के चिन्तन से लाभ

(चाल छन्द १४ मात्रा)

मुनि सकल व्रती बड़भागी, भव भोगनतें वैरागी ।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तै अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥

शब्दार्थ—सकल व्रती = महाव्रती । बड़भागी = भाग्यशाली । भव = संसार । भोगतें = पंचेन्द्रिय संबंधी विषयों से । वैरागी = उदास । उपावन = उत्पन्न करने के लिए । माई = माता । चिन्तै = चितवन । अनुप्रेक्षा = भावना ।

अर्थ—हे भाई ! महाव्रती मुनिराज बड़े भाग्यवान हैं । वे संसार और भोगों से विरक्त हो जाते हैं । वे मुनिराज वैराग्य को उत्पन्न करने के लिए माता के समान बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हैं ।

प्रश्न १—संसार में भाग्यशाली कौन है ?

उत्तर—"**मुनि सकल व्रती बड़भागी ।**" मुनिराज सकल व्रत के धारी भाग्यवान हैं ।

प्रश्न २—वे मुनिराज कैसे होते हैं ?

उत्तर—"भव भोगनतें वैरागी ।" संसार एवं भोग से विरक्त होते हैं ।

प्रश्न ३—वैराग्य की उत्पादक माता कौन है ?

उत्तर—वैराग्य की उत्पादक भावनाएँ हैं, वे १२ हैं—

(१) अनित्य, (२) अशरण, (३) संसार, (४) एकत्व, (५) अन्यत्व, (६) अशुचि, (७) आस्रव, (८) संवर, (९) निर्जरा, (१०) लोक, (११) बोधिदुर्लभ, (१२) धर्म ।

प्रश्न ४—वैराग्य की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर—बारह भावनाओं का जो वैराग्य की माताएँ हैं, प्रतिदिन चिन्तवन करना चाहिए ।

प्रश्न ५—अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—संसार, शरीर और भोगादि के स्वरूप का बार-बार चिंतवन करना अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ६—सकलव्रत किसे कहते है ?

उत्तर—५ महाव्रत, ५ समिति, ६ आवश्यक, ५ इन्द्रियजय और शेष ७ गुण । ये सकलव्रत कहलाते हैं ।

प्रश्न ७—सकलव्रती कौन है ?

उत्तर—सम्पूर्ण रूप से व्रतों को पालने वाले महाव्रती दिगम्बर मुनि सकलव्रती हैं ।

प्रश्न ८—मुनि कौन है ?

उत्तर—समस्त आरम्भ, परिग्रह रहित, विषयभोग के त्यागी तथा रत्नत्रय के उपासक गुरु मुनि कहलाते हैं ।

इन चिन्तन समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै ।
जब ही जिय आतम जाने, तब ही जिय शिव सुख ठानै ।। २१।।

शब्दार्थ—इन = बारह भावना । चिन्तन = बार-बार विचारने से । समसुख = समतारूपी सुख । जागै = उत्पन्न होता है । जिमि = जैसे । ज्वलन = अग्नि । पवन = हवा । लागै = लगने से । जब ही = जिस क्षण । जिय = आत्मा । जाने = पहचान लेता है । तब ही = उसी क्षण । शिवसुख = मोक्ष सुख । ठानै = पाता है ।

अर्थ—जैसे हवा के लगने से अग्नि प्रज्वलित हो उठती है । वैसे ही भावनाओं का चिन्तन करने से समतारूपी सुख जागृत हो जाता है । जब वह जीव अपनी आत्मा के स्वरूप को पहचान लेता है उसी समय मोक्षसुख को पा लेता है ।

प्रश्न १—अनुप्रेक्षा या भावना के चिन्तवन से क्या होता है ?

उत्तर—भावनाओं का चिन्तवन करने से समतारूपी सुख की प्राप्ति होती है तथा यह जीव अपने आत्मस्वरूप को जानता है ।

प्रश्न २—आत्मस्वरूप को जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—आत्मस्वरूप को जानने से शिवसुख की प्राप्ति होती है । भावनाओं से चिन्तवन के बिना आत्मध्यान नहीं, आत्मध्यान के बिना शिवसुख और शिवसुख के बिना कभी भी शाश्वत सुख और शान्ति नहीं मिल सकती है ।

प्रश्न ३—सुख किसे कहते हैं ? वह कहाँ मिलता है ?

उत्तर—आह्लादस्वरूप जीव की परिणति को सुख कहते हैं । सुख आत्मा की वस्तु है । वह आत्मा में है कहीं बाहर नहीं मिलता है ।

(१) अनित्य भावना

जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी ।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ।।३।।

शब्दार्थ—जोबन = जवानी । गृह = घर । गोधन = गाय-भैंस । नारी = स्त्री । हय = घोड़ा । गय = हाथी । जन = कुटुम्बी । आज्ञाकारी = नौकर-चाकर । छिन थाई = क्षणभंगुर । सुरधनु = इन्द्रधनुष । चपला = बिजली । चपलाई = चंचलता ।

अर्थ—जवानी, घर, गाय-भैंस, रुपया-पैसा, स्त्री, घोड़ा, हाथी, कुटुंबी जन, नौकर-चाकर, पाँचों इन्द्रियों के भोग, इन्द्रधनुषी और बिजली की चंचलता के समान क्षणभर रहने वाले हैं ।

प्रश्न १—यौवन, घर, मकान आदि तथा इन्द्रियों के भोगादि कैसे हैं ?

उत्तर—यौवन, हाथी, घोड़ा, मकान, इन्द्रिय भोगादि सब क्षणिक हैं। इन्द्रधनुष के समान अथवा बिजली की चंचलता के समान क्षणभंगुर हैं ।

प्रश्न २—बाह्य पदार्थों से प्राप्त सुख वास्तविक है या नहीं ?

उत्तर—बाह्य पदार्थों से प्राप्त सुख, सुख नहीं वह तो 'सुखाभास' सुख जैसा प्रतीत होता है पर वास्तविक नहीं है । क्योंकि वही है जिसके पीछे दुःख नहीं है । ये इन्द्रियजन्य सुख कुछ क्षण अच्छे लगते हैं पर बाद में पीड़ा देते हैं इसलिए ये वास्तविक सुख नहीं हैं ।

प्रश्न ३—अनित्य भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर—संसार में कोई वस्तु नित्य स्थायी नहीं है ऐसा विचार करना, बार-बार चिन्तन करना अनित्य भावना है ।

(२) अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दलेते ।
मणि मन्त्र-तन्त्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ।।४।।

शब्दार्थ—सुर असुर खगाधिप = इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर । मृग = हरिण । ज्यों = जैसे । हरि = सिंह । काल = मौत । दलेते = नष्ट कर देता है ।

अर्थ—जैसे हिरण को सिंह नष्ट कर देता है वैसे ही इन्द्र-नरेन्द्र आदि को भी मृत्यु नष्ट कर देती है । मृत्यु से मणि, मन्त्र-तन्त्र आदि कोई भी बचा नहीं सकता है ।

प्रश्न १—असुर किसे कहते हैं ?

उत्तर—अधोलोक की पहली पृथ्वी के पंकभाग में रहनेवाले भवनवासी देव में एक 'असुरकुमार' भी है ।

प्रश्न २—सुर किसे कहते हैं ?

उत्तर—देवगति नामकर्म का उदय होने पर अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व—इन आठ ऋद्धियों के कारण द्वीप समुद्रों में इच्छानुसार जो विविध क्रीड़ाएँ करते हैं वे देव कहलाते हैं ।

प्रश्न ३—मरने से कोई बचा सकता है क्या ?

उत्तर—"मरते न बचावे कोई ।"

प्रश्न ४—मन्त्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मन और मनोकामना की रक्षा करे, उसे मन्त्र कहते हैं ।

प्रश्न ५—तन्त्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रयोग के साधन को तन्त्र कहते हैं ।

प्रश्न ६—अशरण भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर—संसार में कोई शरण नहीं है और मरने से कोई बचाने वाला नहीं है—ऐसा चिन्तन करना अशरण भावना है ।

(३) संसार भावना

चहुँगति दु:ख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करे हैं ।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ।।५।।

शब्दार्थ—चहुँगति = चारों गतियाँ । भरै = भोगते । सब विधि = सब प्रकार से । असारा = सार रहित । यामें = इसमें । लगारा = थोड़ा भी ।

अर्थ—जीव चारों गतियों के दु:खों को भोगते हुए पाँच परिवर्तनों को करता रहता है । यह संसार इस तरह असार है । इसमें थोड़ा भी सार नहीं है ।

प्रश्न १—संसार भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर—सारहीन दु:खों से भरे हुए इस संसार में कहीं भी चैन नहीं है, ऐसा विचार करना संसार भावना है ।

प्रश्न २—गति किसे कहते हैं, वे कितनी होती हैं ?

उत्तर—गति नामकर्म के उदय से जीव की अवस्थाविशेष को गति कहते हैं । गति ४ हैं—(१) मनुष्य गति, (२) देव गति, (३) तिर्यच गति और (४) नरक गति ।

प्रश्न ३—परिवर्तन कितने होते हैं ? उनका स्वरूप संक्षेप में बताओ ।

उत्तर—(१) द्रव्य परिवर्तन, (२) क्षेत्र परिवर्तन, (३) काल परिवर्तन, (४) भाव परिवर्तन और (५) भव परिवर्तन । इस प्रकार ५ परावर्तन होते हैं ।

(१) **द्रव्य परिवर्तन**—कर्म और नोकर्मस्वरूप पुद्गल-वर्णनाओं को ग्रहण करना और छोड़ना द्रव्य परिवर्तन है ।

(२) **क्षेत्र परिवर्तन**—सर्व आकाश प्रदेशों में जन्म-मरण करना क्षेत्र परिवर्तन है ।

(३) **काल परिवर्तन**—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के सर्व समयों में जन्म-मरण करना काल परिवर्तन है ।

(४) **भाव परिवर्तन**—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट बन्ध रूप स्थिति बन्ध होना भाव परिवर्तन है ।

(५) **भव परिवर्तन**—सम्पूर्ण आयु के विकल्पों में जन्म-मरण ग्रहण करना भव परिवर्तन है ।

प्रश्न ४—संसार किसे कहते हैं ?

उत्तर—कोयले को कितना भी घिसो काला ही काला है । प्याज को

छीलने पर कुछ हाथ नहीं आता है। उसी प्रकार जिसमें घूमते हुए कहीं भी सार नहीं प्राप्त होता वह संसार है।

(४) एकत्व भावना

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ।।६।।

शब्दार्थ—शुभ = पुण्य। अशुभ = पाप। जेते = जितने। एकहि = अकेला। तेते = उन सबको। सुत = पुत्र। दारा = स्त्री। सीरी = साथी। स्वारथ = मतलब। भीरी = गरजी।

अर्थ—पुण्य और पाप कर्मों के फल जितने भी हैं उनको यह जीव अकेला ही भोगता है। पुत्र, स्त्री कोई साथी नहीं होते। सब मतलब के गर्जी हैं—ऐसा विचार करना एकत्व भावना है।

प्रश्न १—शुभ कर्मफल किसे कहते हैं ?

उत्तर—सच्चे देव द्वारा कहे गये धार्मिक कार्यों का फल शुभ फल कहलाता है। जैसे—उत्तम कुल, सुखी, धनी, सम्पन्न परिवार, निरोग शरीर आदि।

प्रश्न २—अशुभ कर्मफल किसे कहते हैं ?

उत्तर—हिंसादि लोकनिंद्य कार्यों का फल अशुभ फल कहलाता है। जैसे नीच कुल, खोटी सन्तान, दरिद्रता आदि अशुभ कर्मों का फल है।

(५) अन्यत्व भावना

जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
त्यों प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ।।७।।

शब्दार्थ—पय = दूध। मेला = सम्बन्ध। भेला = इकट्ठा। प्रगट = प्रत्यक्ष। जुदे = अलग। धामा = मकान। रामा = स्त्री। इक = एक। क्यों ह्वै = कैसे हो सकते हैं।

अर्थ—दूध और पानी के मेल के समान ही शरीर और आत्मा का

मेल है। फिर भी भिन्न है, एक नहीं है। फिर प्रत्यक्ष रूप से अलग दिखनेवाले पुत्र, स्त्री, धन, मकान मिलकर एक कैसे हो सकते हैं।

प्रश्न १—अन्यत्व भावना का चिन्तवन कैसे करना चाहिए ?

उत्तर—संसार की कोई वस्तु मेरी नहीं है और मैं भी किसी का नहीं हूँ। अन्य वस्तु अन्य रूप है और मैं अन्य रूप हूँ। इस प्रकार पर से भिन्न चिंतन करना चाहिए—यही अन्यत्व भावना है।

प्रश्न २—इस भावना के चिंतन से लाभ बताइए ?

उत्तर—इस भावना के चिंतन से भेदज्ञान की सिद्धि होती है।

प्रश्न ३—शरीर और आत्मा का सम्बन्ध कैसा है ?

उत्तर—दूध और पानी के समान शरीर और आत्मा का सम्बन्ध है। दूध और पानी सदा-सदा साथ रहते हैं पर दूध अलग है, पानी अलग। दूध पानीरूप नहीं होता और पानी दूधरूप नहीं होता। इस प्रकार शरीर और आत्मा अनादिकाल से एकसाथ रह रहे हैं, पर शरीर है वह आत्मा नहीं, आत्मा है वह शरीर नहीं।

प्रश्न ४—जब शरीर आत्मा का नहीं है तो पुत्र, स्त्री, मित्र, धन, मकान आदि आत्मा के हो सकते हैं क्या ?

उत्तर—जब शरीर ही सदा साथ रहनेवाला भी आत्मा का नहीं है तो प्रत्यक्ष अलग दिखनेवाले पर-पदार्थ, स्त्री, पुत्र, महल, मकानादि आत्मा के कैसे हो सकते हैं अर्थात् कभी भी नहीं हो सकते।

(६) अशुचि भावना

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नवद्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किमि यारी ॥८॥

शब्दार्थ—पल = मांस। रुधिर = खून। राध = पीब। मल = विष्ठा। थैली = घर। कीकस = हड्डी। वसा = चर्बी। मैली = मलीन। नवद्वार = नौ दरवाजे। बहैं = झरते हैं। घिनकारी = ग्लानि उत्पन्न करने वाले। अस = ऐसी। किमि = कैसे। यारी = मैत्री।

अर्थ—यह शरीर मांस, खून, पीब और मल का घर है, हड्डी, चर्बी

आदि से अपवित्र है । इसमें ग्लानि पैदा करनेवाले ९ द्वार हमेशा बहते हैं, ऐसे शरीर से कैसे प्रीति करनी चाहिये ।

प्रश्न १—अशुचि भावना का चिन्तन कैसे करें ?

उत्तर—यह शरीर मांस, खून, पीव आदि ग्लानिदायक वस्तुओं का घर है । हर तरह अपवित्र है, प्रीति के योग्य नहीं है, ऐसा विचार करते हुए अशुचि भावना का चिन्तन करना चाहिये ।

प्रश्न २—इसके चिन्तन से क्या लाभ है ?

उत्तर—इसके चिन्तन से शरीर एवं भोगों से विरक्ति होती है । वैराग्य दृढ़ होता है ।

प्रश्न ३—सात कुधातुओं के नाम बताइए ?

उत्तर—(१) रस, (२) रुधिर, (३) मांस, (४) मेद, (५) अस्थि, (६) मज्जा और (७) वीर्य ।

प्रश्न ४—नव मलद्वारों के नाम बताइए ?

उत्तर—नव मलद्वार—दो आँखें, दो नाक के छिद्र, एक मुख, एक गुदा, एक मूत्रेन्द्रिय और दो कान = २ + २ + १ + १ + १ + २ = ९ मलद्वार ।

(७) आस्रव भावना

जो जोगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई ।
आस्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे ।।९।।

शब्दार्थ—जोगन की = मन, वचन, काय की । चपलाई = चंचलता । आस्रव = कर्मों का आना । ह्वै = होता है । घनेरे = अधिक । बुधिवन्त = विद्वान, चतुर । निरवेरे = त्यागना ।

अर्थ—हे भाई ! मन, वचन, काय की चंचलता से आस्रव होता है, उस आस्रव से अधिक दुःख होते हैं, इसलिये बुद्धिमान, चतुर मनुष्य उनको दूर करे । ऐसा विचार करना आस्रव भावना है ।

प्रश्न १—योग किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन, वचन, काय के निमित्त से आत्म प्रदेशों का हलन-चलन योग कहलाता है ।

प्रश्न २—आस्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्मों के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं।

प्रश्न ३—आस्रव कैसे होते हैं?

उत्तर—आस्रव सदैव दुःख को देनेवाले होते हैं।

प्रश्न ४—बुद्धिमान क्या करते हैं?

उत्तर—बुद्धिमान आस्रवों से दूर रहते हैं।

प्रश्न ५—आस्रव भावना किसे कहते हैं?

उत्तर—आस्रव को दुःख के कारण या संसार के कारण जानकर उनसे बचने का चिन्तन करना आस्रव भावना है।

प्रश्न ६—आस्रव के कितने भेद हैं?

उत्तर—आस्रव के दो भेद हैं—(१) शुभास्रव और (२) अशुभास्रव।

---

(८) संवर भावना

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

शब्दार्थ—पुण्य = शुभोपयोग। पाप = अशुभोपयोग। कीना = किया। अनुभव = चिन्तवन। चित = मन। दीना = लगाया। तिनही = उन्होंने। आवत = आते हुए। विधि = कर्म। रोके = रोका। अवलोके = पाया।

अर्थ—जिन्होंने पुण्य और पाप कुछ भी नहीं किया है, केवल अपनी आत्मा के चिन्तवन में मन को लगाया है उन्होंने ही आते हुए नवीन कर्मों को रोककर संवर को पाकर सुख को पाया है।

प्रश्न १—संवर भावना किसे कहते हैं?

उत्तर—जो पुण्य-पाप न कर केवल आनेवाले नवीन कर्मों को रोककर आत्मचिन्तन करते हैं वे ही संवर को पाकर सुख पाते हैं ऐसा विचार करना संवर भावना है।

प्रश्न २—पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर—शुभोपयोग रूप क्रिया को पुण्य कहते हैं।

प्रश्न ३—शुभोपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर—देव पूजा, स्वाध्याय आदि धार्मिक कार्यों की ओर मन, वचन, काय की प्रवृत्ति शुभोपयोग कहलाती है।

प्रश्न ४—पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर—अशुभोपयोग रूप क्रिया को पाप कहते हैं।

प्रश्न ५—अशुभोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—विषय, कषाय आदि को और त्रियोग की प्रवृत्ति अशुभोपयोग कहलाती है।

प्रश्न ६—संवर किसे कहते हैं ?

उत्तर—आस्रवों का निरोध करना या रोकना संवर कहलाता है।

---

(९) निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप कर जो कर्म खिपावैं, सोई शिव सुख दरसावैं ।।११।।

शब्दार्थ—निज काल = अपनी स्थिति। झरना = नष्ट होना। निज काज = अपना मतलब। सरना = सिद्ध होना। खिपावैं = नष्ट करता है। दरसावैं = दिखाता है।

अर्थ—अपना समय पाकर कर्मों का नष्ट होना सविपाक-अविपाक निर्जरा है। उससे अपना लाभ नहीं होता। तप के द्वारा जो कर्म नष्ट होते हैं वह अविपाक या सकाम निर्जरा है। वह मोक्ष का सुख दिखाती है। ऐसा विचार निर्जरा भावना है।

प्रश्न १—निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—(तप के द्वारा) एकदेश कर्मों का खिर जाना निर्जरा है।

प्रश्न २—निर्जरा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) अकाम निर्जरा और (२) सकाम निर्जरा।

अथवा

(१) सविपाक निर्जरा और (२) अविपाक निर्जरा।

प्रश्न ३—अकाम निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण करके कर्मों का झरना सविपाक या अकाम निर्जरा कहलाती है। जैसे—कैरी अपना समय आने पर ही पकती

या गिरती हैं, उसी प्रकार सविपाक निर्जरा में कर्म अपनी स्थिति पूर्ण होने पर ही फल देकर झड़ते हैं।

प्रश्न ४—सकाम निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—तप के द्वारा कर्मों का असमय में खिरा देना सकाम या अविपाक निर्जरा कहलाती है। जैसे—कोई कच्चा आम तोड़कर पाल में दबा कर असमय में पका दिया जाता है, उसी प्रकार अविपाक निर्जरा में कर्मस्थिति पूर्ण हुए बिना ही तप के द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं।

प्रश्न ५—कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा के असली स्वभाव को ढकनेवाले पुद्‌गल परमाणु कर्म कहलाते हैं।

(१०) लोक भावना

किनहू न करै न धरै को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाँहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।१२।।

शब्दार्थ—किनहूँ = कोई। करै = बनाता है। धरै = रक्षा करता है। हर = नाश करता है। षट् द्रव्यमयी = छः द्रव्य स्वरूप। समता = शांति (समभाव)। भ्रमता = घूमता-फिरता।

अर्थ—छह द्रव्यों से भरे हुए इस संसार को न कोई बनाता है, न रक्षा करता है, न ही नाश कर सकता है। ऐसे इस संसार में समताभाव के बिना हमेशा भटकता हुआ यह जीव दुःखों को सहता है।

प्रश्न १—छह द्रव्यों के नाम बताओ ?

उत्तर—(१) जीव, (२) पुद्‌गल, (३) धर्म, (४) अधर्म, (५) आकाश, और (६) काल।

प्रश्न २—द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित हो उसे द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न ३—उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—नई पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं। जैसे—सोने के कुण्डल का हार या चूड़ी बनाना।

प्रश्न ४—व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य में पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते हैं। जैसे—चूड़ी पर्याय की उत्पत्ति कुण्डल पर्याय का नाश है।

प्रश्न ५—ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं।

प्रश्न ६—लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें छहों द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं।

प्रश्न ७—लोक भावना का स्वरूप बताइए ?

उत्तर—छह द्रव्यों से परिपूर्ण यह संसार न किसी के द्वारा बनाया गया है और न कोई इसकी रक्षा या नाश कर सकता है। ऐसे संसार में यह जीव समता भाव के अभाव में भ्रमण करता हुआ दुःख भोगता है ऐसा चिंतन करना लोक भावना है।

(११) बोधि दुर्लभ भावना

अन्तिम ग्रीवक लों की हद, पायो अनन्त बिरिया पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥१३॥

शब्दार्थ—अन्तिम ग्रीवक = नवमें ग्रैवेयक। ग्रीवक = सोलहवें स्वर्ग के ऊपर का स्थान। अनन्त बिरिया = अनन्त बार। पद = स्थान। लाधौ = पाया। साधौ = सिद्ध किया।

अर्थ—इस जीव में नवमें ग्रैवेयक के पद अनन्त बार पाये किन्तु सम्यग्ज्ञान नहीं पाया। ऐसे दुर्लभ सम्यग्ज्ञान को मुनि अपनी आत्मा में धारण करता है।

प्रश्न १—ग्रैवेयक किस स्थान को कहते हैं ?

उत्तर—सोलहवें स्वर्ग के ऊपर और अनुदिश से नीचे के अहमिन्द्रों का निवास स्थान ग्रैवेयक कहलाता है।

प्रश्न २—संसार में सबसे अधिक कठिनता से क्या प्राप्त होता है ?

उत्तर—सम्यग्ज्ञान संसार में सबसे अधिक कठिनता से प्राप्त होता है।

प्रश्न ३—बोधि दुर्लभ भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर—अहमिन्द्र पद पाना सरल है, किन्तु सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति

सरल नहीं है। उस कठिन ज्ञान का मुनिजन ही साधन कर पाते हैं—ऐसा चिन्तन करना बोधि दुर्लभ भावना है।

(१२) धर्म भावना

जो भाव मोहतें न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबैं जिस धारे, तब ही सुख अचल निहारें ।।१४।।

शब्दार्थ—भाव = परिणाम। मोहतें = मिथ्यात्व से। न्यारे = भिन्न। दृग ज्ञानव्रतादिक = रत्नत्रय। अचल = स्थिर। सुख = आनन्द (मुक्तिसुख)। निहारें = पाता है।

अर्थ—मिथ्यात्व से भिन्न सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र आदि जो भाव हैं वे धर्म कहलाते हैं। उस धर्म को जब यह जीव धारण करता है, तभी मोक्ष सुख पाता है।

प्रश्न १—धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव को संसार के दु:खों से निकालकर उत्तम सुख रत्नत्रय की प्राप्ति करावे या मोक्षसुख को प्राप्त करावे, उसे धर्म कहते हैं।

प्रश्न २—धर्म का लक्षण क्या है ?

उत्तर—(१) वस्तु स्वभाव धर्म है।
(२) अहिंसा धर्म है।
(३) **दस लक्षण**—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, और ब्रह्मचर्य धर्म है।
(४) रत्नत्रय आदि धर्म है।

प्रश्न ३—मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—तत्त्व के विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ४—मोक्ष सुख की प्राप्ति किससे होती है ?

उत्तर—मोक्ष सुख की प्राप्ति धर्म से होती है।

प्रश्न ५—मोक्ष किसे कहते हैं ? अचल सुख कहाँ है ?

उत्तर—सब कर्मों से रहित अवस्था मोक्ष है। अचल सुख मोक्ष में है।

प्रश्न ६—धर्म भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ही सच्चा धर्म है। इसके धारण करने पर ही मोक्षसुख मिलता है, ऐसा विचार करना धर्मभावना है।

निश्चय धर्म धारण करने का अधिकारी

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्राणी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

शब्दार्थ—सो = वह धर्म। मुनिनकरि = मुनियों के द्वारा। धरिये = पालन किया जाता है। करतूत = कर्त्तव्य। उचरिये = कहते हैं। भवि प्राणी = भव्य जीव। अनुभूति = अनुभव। पिछानी = पहचानो।

अर्थ—उस धर्म को मुनिराज धारण करते हैं, इसलिए उनके कर्त्तव्यों का वर्णन किया जाता है। हे भव्य जीवो! उन मुनि के कर्त्तव्यों को सुनो और अपने आत्मा के अनुभव को पहचानो।

प्रश्न १—पूर्ण रत्नत्रय धर्म किसके द्वारा पालन किया जाता है।

उत्तर—वह रत्नत्रय धर्म निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनियों के द्वारा पालन किया जाता है।

●

षष्ठम ढाल

अहिंसादि ४ महाव्रतों का लक्षण

(हरि गीता छन्द)

षट्काय जीव न हननतैं, सबविध दरब हिंसा टरी ।
रागादि भाव निवारतें, हिंसा न भावित अवतरी ।।
जिनके न लेष मृषा, न जल मृण हू बिना दीयो गहैं ।
अठदश सहस विध शील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहें ।।१।।

शब्दार्थ—षट् काय = पाँच स्थावर और एक त्रसकाय । हननतें = मारने से । सब विध = सब प्रकार । दरब हिंसा = द्रव्य हिंसा । टरी = दूर हो जाती है । रागादिभाव = रागद्वेषादि । निवारतें = नष्ट होने से । भावित = भाव हिंसा । न अवतरी = नही होती है । लेश = थोड़ी भी । मृषा = झूठ । मृण = मिट्टी । गहै = ग्रहण करना । अठदश = अठारह । सहस = हजार । चिद्ब्रह्म = आत्मा । रमि रहें = लीन हो जाना ।

अर्थ—छह प्रकार के जीवों की हिंसा न करने से सब प्रकार की द्रव्यहिंसा दूर हो जाती है । और रागद्वेषादि भावों के नष्ट होने से भावहिंसा भी नहीं होती है ।

(१) **अहिंसा महाव्रत**—द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा के पूर्ण अभाव होने को अहिंसा महाव्रत कहते हैं ।

(२) **सत्य महाव्रत**—थोड़ा भी झूठ नहीं बोलने को सत्य महाव्रत कहते हैं ।

(३) **अचौर्य महाव्रत**—पानी और मिट्टी भी बिना दिये ग्रहण नहीं करना अचौर्य महाव्रत है ।

(४) **ब्रह्मचर्य महाव्रत**—अठारह हजार शील के भेदों को धारण कर अपनी आत्मा में लीन होना ब्रह्मचर्य महाव्रत है ।

प्रश्न १—षट्काय जीवों का नाम बताइए ?

उत्तर—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक ।

प्रश्न २—द्रव्य हिंसा किसे कहते है ।

उत्तर—षट्काय के जीवों का घात करना या विराधना करना द्रव्य हिंसा है।

प्रश्न ३—भाव हिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर—राग-द्वेषादि विकार परिणति को भाव हिंसा कहते हैं ।

प्रश्न ४—शील किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) शील स्वभाव को कहते हैं ।
(२) स्त्री मात्र का त्याग अखण्ड शीलव्रत कहलाता है ।
(३) अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य सभी को माता, बहिन या पुत्री के समान देखना एकदेश शीलव्रत है ।

प्रश्न ५—१८ हजार प्रकार का शील बताइए ?

उत्तर—शील के १८ हजार भेद—

१० प्रकार मैथुन कर्म व उसकी १० अवस्थाएँ । इनका परस्पर गुणा करने पर १०X१०=१०० भेद होते हैं । यह मैथुन ५ इन्द्रियों से होता है अत: १००X५=५०० । तीनों योगों से गुणा करने पर ५००X३=१५०० भेद होते हैं । इनका कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर १५००X३ = ४५०० होते हैं और जागृत तथा स्वप्न दोनों अवस्थाओं में होने से ४५००X२=९००० भेद होते हैं । तथा चेतन-अचेतन दो तरह की स्त्रियों के होने से गुणित करने पर ९०००X२=१८००० शील के भेद हो जाते हैं ।

परिग्रह त्याग महाव्रत एवं पाँच समिति

अन्तर चतुर्दश भेद बाहर, संग दशधा तैं टलैं ।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलै ।।
जग सुहित कर सब अहित हर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं ।
भ्रम रोग हर जिनके वचन, मुख चन्द्रतैं अमृत झरैं ।।

शब्दार्थ—अन्तर = अन्तरंग । चतुर्दश = चौदह । बाहर = बहिरंग । संग = परिग्रह । दशधा = दस प्रकार । टलैं = दूर रहते हैं । परमाद = आलस्य । तजि = छोड़कर । चउ = चार । कर = हाथ । मही = पृथ्वी । लखि = देखकर । सुहित = कल्याण । अहित = बुराई । हर = दूर

करनेवाले । श्रुति = कान । सुखद = प्रिय । संशय = संदेह । भ्रन = विपर्यय । मुखचन्द्र = मुखरूपी चन्द्रमा । झरैं = निकलते हैं ।

अर्थ—(१) जो अन्तरंग १४ प्रकार के और १० प्रकार के बहिरंग से सदा दूर हैं वे परिग्रह त्याग महाव्रती कहलाते हैं ।

(२) आलस्य छोड़कर चार हाथ जमीन आगे देखकर चलना ईर्यासमिति है ।

(३) जिन मुनिराजों के मुखरूपी चन्द्रमा से संसार का कल्याण करनेवाले, सब बुराइयों को नष्ट करनेवाले, कानों को प्रिय लगनेवाले, सब संदेहों को दूर करनेवाले, मिथ्यात्वरूपी रोगों को दूर करनेवाले वचन अमृत के समान झरते हैं, निकलते हैं ।

प्रश्न १—भाषा समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर—हित, मित, परमित, प्रिय सब सन्देहों को दूर करनेवाले, मिथ्यात्वरूपी रोग को दूर करनेवाले वचन जिसमें बोले जाते हैं वह भाषा समिति है ।

प्रश्न २—मुनियों की वाणी कैसी होती है ?

उत्तर—जग सुहित कर सब अहित हर, श्रुति सुखद सब संशय हरें ।
भ्रम रोग हर जिनके वचन, मुख-चन्द्रतैं अमृत झरैं ।।

जगत का हित करनेवाली, अहित नाशक, संशय को दूर करनेवाली कर्णप्रिय, भ्रम रोगों को हरनेवाली मुनियों की वाणी चंद्रमा की चाँदनी के समान अमृतमयी होती है ।

प्रश्न ३—प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—आवश्यक क्रियाओं में उत्साह नहीं होना प्रमाद है ।

इसके (प्रमाद के) १५ भेद हैं—४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रिय विषय, १ निद्रा और १ स्नेह ।

प्रश्न ४—चार विकथाओं के नाम बताइये ?

उत्तर—स्त्री-कथा, भोजन-कथा, राज-कथा और चोर-कथा ।

प्रश्न ५—महाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—हिंसादि पाँच पापों का पूर्ण त्याग करना महाव्रत कहलाता है ।

प्रश्न ६—महाव्रतों का पालन कौन करते हैं ?

उत्तर—दिगम्बर मुनि महाव्रतों का पालन करते हैं इसी कारण उन्हें महाव्रती साधु भी कहते हैं ।

प्रश्न ७—परिग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर-वस्तुओं में ममताभाव को परिग्रह कहते हैं।

प्रश्न ८—समिति किसे कहते हैं ? उसके भेद व नाम बतलाइए।

उत्तर—(१) प्रवृत्ति में प्रमाद के अभाव को समिति कहते हैं;

या (२) यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति को समिति कहते हैं।

समिति के ५ भेद हैं—(१) ईर्या समिति, (२) भाषा समिति, (३) एषणा समिति, (४) आदाननिक्षेपणसमिति और (५) व्युत्सर्ग समिति।

छ्यालीस दोष विना सुकुल, श्रावक तनै घर अशन को।
ले तप बढ़ावन हेतु नहिं तन, पोषते तजि रसन को॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन, मल मूत्र श्लेषम परिहरैं॥३॥

शब्दार्थ—सुकुल = उत्तम कुल वाले। तनैं = के। अशन = भोजन। ले = लेते हैं। हेतु = अभिप्राय से। पोषत = पुष्ट करने को। रसन = (छह रस) स्वाद रहित। शुचि = पवित्रता। ज्ञान = बोध। संयम = चारित्र। उपकरण = साधन। लखिकैं = देखकर। गहैं = उठाना। धरैं = रखना। निर्जन्तु = जीव रहित। थान = स्थान। विलोक = देखकर। श्लेषम = खकार, थूक, कफ। परिहरैं = दूर करते हैं।

अर्थ—उत्तम कुल वाले श्रावक के घर (छहों रस या एक-दो रस छोड़कर) रसना इन्द्रिय की लोलुपता छोड़कर शरीर को पुष्ट करने के लिए नहीं किन्तु तप की वृद्धि के लिये छियालीस दोष रहित भोजन लेना एषणा समिति है।

शुद्धि के उपकरण कमण्डलु, ज्ञान के उपकरण-शास्त्र और संयम के उपकरण पिच्छी को देखकर उठाना, देखकर रखना आदान-निक्षेपण समिति है।

प्रश्न ९—एषणा समिति के ४६ दोष कौन से हैं ?

उत्तर—१६ उद्गम दोष दाता के आश्रित, १६ उत्पादन दोष पात्र के आश्रित तथा १४ एषणा दोष आहार सम्बन्धी—कुल ४६ होते हैं।

१६ **उद्गम दोष**—(दाता के आश्रित)

(१) उद्दिष्ट, (२) अध्यधि, (३) पूति, (४) मिश्र, (५) स्थापित, (६) बलि, (७) प्रादुष्कर, (८) प्राविष्कृत, (९) क्रीत, (१०) ऋण, (११) परावर्त, (१२) अभिघट, (१३) उद्भिन्न, (१४) मालारोपण, (१५) आच्छेद्य और (१६) अनीशार्थ।

१६ उत्पादन दोष (पात्र के आश्रित)

(१) धात्री, (२) दूतक, (३) निमित्त, (४) आजीवक, (५) वनीपक, (६) चिकित्सा, (७) क्रोध, (८) मान, (९) माया, (१०) लोभ (११) पूर्व स्तुति (१२) पश्चात्स्तुति, (१३) विद्योत्पादन, (१४) मंत्रोत्पादन, (१५) चूर्णोत्पादन, (१६) मूलकर्म ।

१४ एषणा दोष—

(१) शाङ्कित, (२) म्रक्षित, (३) निक्षिप्त, (४) पिहित, (५) संव्यवहरण, (६) दायक, (७) उन्मिश्रण, (८) अपरिणत, (९) लिप्त, (१०) परित्यजन, (११) संयोजना, (१२) अप्रमाण, (१३) अंगार और (१४) धूम दोष ।

प्रश्न २—तप किसे कहते हैं ?

उत्तर—इच्छा के रोकने को तप कहते हैं ।

दो भेद—(१) अन्तरंग और (२) बहिरंग ।

बाह्य तप के ६ भेद—(१) अनशन, (२) ऊनोदार, (३) वृत्तिपरिसंख्यान, (४) रसपरित्याग, (५) विविक्तशय्यासन, (६) कायक्लेश ।

अन्तरंग तप के ६ भेद—(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैय्यावृत्ति, (४) स्वाध्याय, (५) व्युत्सर्ग और (६) ध्यान ।

प्रश्न ३—शौच, ज्ञान एवं संयम के उपकरणों के नाम बताइए ?

उत्तर—शौच या शुद्धि का उपकरण	—कमण्डलु
ज्ञान का उपकरण	—शास्त्र
एवं संयम का उपकरण	—मयूर-पीछी है ।

प्रश्न ४—मुनिराज आहार क्यों लेते हैं ?

उत्तर—मुनिराज तप की वृद्धि के लिये आहार लेते हैं । शरीर को पुष्ट करने के लिये वे कभी आहार नहीं लेते हैं ।

तीन गुप्ति एवं पंचेन्द्रिय विजय

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच, काय आतम ध्यावतै ।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृग गण, उपल खाज खुजावतै ।।
रस रूप गन्ध तथा फरस अरु, शब्द सुह असुहावने ।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय, जयन पद पावने ।।४।।

शब्दार्थ—सम्यक् प्रकार = भली प्रकार। निरोध = रोककर। ध्यावतें = ध्यान करते हैं। तिन = उनकी। सुथिर = स्थिर (शांत)। मुद्रा = आकृति। देखि = देखकर। मृग गण = हिरनों का समूह। उपल = पत्थर। खाज = खुजली। खुजावते = खुजाते हैं। रस = पाँच रस। रूप = पाँच वर्ण। गन्ध = दो गन्ध। फरस = आठ स्पर्श। सुह = प्रिय। असुहावने = अप्रिय। तिनमें = उनमें। विरोध = द्वेष। राग = प्रीति। जयन = जीतना। पद = स्थान। पावने = पाते हैं।

अर्थ—वीतराग मुनि भली प्रकार मन, वचन, काय को रोककर अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं। उस समय मुनियों की शांत मुद्रा को देखकर हिरणों का समूह उन्हें पत्थर समझकर अपनी खुजली को खुजाता है।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द चाहे इष्ट हो या अनिष्ट उनमें रागद्वेष नहीं करना, **इन्द्रिय जय** कहलाता है। इन्द्रिय जय करनेवाले जितेन्द्रिय पद को पाते हैं।

प्रश्न १—गुप्ति किसे कहते हैं।

उत्तर—मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को भली प्रकार रोकना गुप्ति है।

प्रश्न २—मनोगुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन को वश में करना मनोगुप्ति है।

प्रश्न ३—वचन गुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—वचन को वश में करना वचन गुप्ति है।

प्रश्न ४—काय गुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीर को वश में करना काय गुप्ति है।

प्रश्न ५—इन्द्रिय जय किसे कहते हैं ?

उत्तर—पाँच इन्द्रिय और मन के ऊपर विजय पाना इन्द्रिय जय है।

प्रश्न ६—जितेन्द्रिय कौन होता है ?

उत्तर—इन्द्रियजय करनेवाले जितेन्द्रिय होते हैं या जिन-पद (अर्हन्त पद) को पाते हैं।

प्रश्न ७—पाँच रसों के नाम बताइए ?

उत्तर—(१) खट्टा, (२) मीठा, (३) कड़वा, (४) कषायला और (५) चरपरा।

प्रश्न ८—पाँच वर्णों के नाम बताइए ?

उत्तर—(१) काला, (२) पीला, (३) नीला, (४) लाल, (५) सफेद।

प्रश्न ९—दो गन्ध बताइए ?

उत्तर—(१) सुगन्ध और (२) दुर्गन्ध ।

प्रश्न १०—आठ भेद स्पर्श के बताइए ?

उत्तर—(१) हल्का, (२) भारी, (३) रूखा, (४) चिकना, (५) शीत, (६) उष्ण, (७) कड़ा और (८) नरम ।

प्रश्न ११—शब्द के सात भेद बताइये ?

उत्तर—(१) सा, (२) रे, (३) ग, (४) म, (५) प, (६) ध, (७) नी या (१) षड्ज, (२) ऋषभ, (३) गांधार, (४) मध्यम, (५) पंचम, (६) धैवत और (७) निषाद ।

प्रश्न १२—पंचेन्द्रिय के कुल विषय कितने हैं ?

उत्तर—पंचेन्द्रियों के कुल २७ विषय हैं—स्पर्श के ८, रसना के ५, नासिका के २, चक्षु के ५ और कर्ण के ७ कुल ८ + ५ + २ + ५ + ७ = २७ । मुनिराज इन इन्द्रिय विषय से विरक्त रहते हैं ।

छह आवश्यक

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को ।
नित करैं श्रुति रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को ।।

शब्दार्थ—समता = मैत्री । सम्हारैं = करना । थुति = स्तुति । उचारैं = कहना । वन्दना = नमस्कार । श्रुति रति = शास्त्रों में प्रेम । प्रतिक्रम = लगे हुए दोषों का पश्चात्ताप करना । तजैं = छोड़ना । अहमेव = अहङ्कार या ममत्व बुद्धि ।

अर्थ—वीतरागी मुनि सदा (१) सामायिक करते हैं, (२) स्तुति बोलते हैं, जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करते हैं, (४) स्वाध्याय से प्रेम करते हैं, (५) प्रतिक्रमण करते हैं और (६) शरीर से ममता को छोड़ते हैं ।

प्रश्न १—आवश्यक किसे कहते हैं ? वे कितने हैं ?

उत्तर—अवश्य करने योग्य क्रिया को आवश्यक कहते हैं ? मुनियों के ये आवश्यक ६ हैं—समता (सामायिक), स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग ।

प्रश्न २—सामायिक किसे कहते हैं ?

उत्तर—संसार के सभी प्राणियों में मैत्रीभाव, संयम में शुभभावना, आर्त्त-रौद्र ध्यान का पूर्ण त्याग को सामायिक कहते हैं ।

समता सर्वभूदेसु, संयमे शुभ-भावना ।
आर्त्त-रौद्र-परित्यागस्तद्धि सामाइयं मतं ।।

प्रश्न ३—स्तुति किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीर्थङ्कर या पंच-परमेष्ठी का सामूहिक गुणानुवाद करना स्तुति कहलाती है।

प्रश्न ४—वंदना किसे कहते हैं ?

उत्तर—२४ तीर्थङ्करों का अलग-अलग गुणानुवाद करना, अर्हन्तादि पंच परमेष्ठी का अलग-अलग कीर्तन करना, वंदना कहलाती है।

प्रश्न ५—प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—मेरे अपराध मिथ्या हों, इस प्रकार लगे हुए दोषों पर पश्चात्ताप करना प्रतिक्रमण है।

प्रश्न ६—स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर— (१) जिनवाणी का पठन-पाठन स्वाध्याय है।
(२) स्वात्म चिन्तन स्वाध्याय है।

प्रश्न ७—कायोत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीर से ममत्व को छोड़ना कायोत्सर्ग है।

शेष ७ गुण एवं मुनियों की समता

जिनके न न्होन न दन्तधावन, लेश अम्बर आवरन ।
भूमाँहि पिछली रयन में, कछु शयन एकासन करन ।।५।।
इक बार दिन में ले आहार, खड़े अलप निजपान में ।
कच-लौंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यान में ।।
अरि मित्र महल मसान कंचन, काँच निंदन थुतिकरन ।
अर्घावतारन असि-प्रहारन, में सदा समता धरन ।।६।।

शब्दार्थ—न्होन = स्नान। दन्तधावन = दतौन। अम्बर = कपड़ा। आवरन = ढक्कन। भू माहिं = जमीन पर। रयन = रात्रि। कछु = थोड़ा। शयन = नींद। एकासन = एक करवट। करन = करते हैं। खड़े = खड़े होकर। अलप = थोड़ा। पान = हाथ। कचलोंच = केशलोंच (केशों का उखाड़ना)। डरत = डरते हैं। अरि = शत्रु। मसान = मरघट। कंचन =

सोना । काँच = शीशा । अर्घावतारन = अर्घ्य चढ़ाना । असि प्रहारन = तलवार मारना । समता = राग-द्वेष नहीं होना ।

अर्थ--(१) मुनि स्नान नहीं करते हैं ।
(२) दतौन नहीं करते हैं ।
(३) रंचमात्र भी कपड़ा शरीर पर नहीं रखते है ।
(४) रात्रि के पिछले भाग में जमीन पर एक ही करवट से थोड़ी नींद लेते हैं ।
(५) दिन में एक बार खड़े होकर थोड़ा-सा आहार लेते हैं ।
(६) अपने हाथों में ही आहार लेते हैं ।
(७) केशलुंच करते हैं, अपनी आत्मा के ध्यान में लीन रहते हुए परीषहों से नहीं डरते हैं ।

वे मुनिराज शत्रु, मित्र, मकान, श्मशान, सोना, काँच, निन्दा करने वाले, स्तुति करनेवाले या तलवार मारनेवाले में हमेशा समता भाव धारण करते हैं ।

मुनियों के कर्त्तव्य एवं स्वरूपाचरण चारित्र

तप तपै द्वादश धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवै सदा ।
मुनि साथ में या एक विचरैं, चहैं, नहिं भव सुख कदा ।।
यों है सकल संयम चरित्र, सुनिये स्वरूपाचरण अब ।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै परकी प्रवृत्ति सब ।।७।।

शब्दार्थ—तपैं = तपते हैं । द्वादश = बारह । धरैं = धारण करते हैं । वृष दश = दश धर्म । रत्नत्रय = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र । सेवै = सेवन करते हैं । एक = अकेले । विचरैं = विहार करते हैं । चहैं = चाहते हैं । भव-सुख = संसार के सुख । कदा = कभी भी । जिस होत = जिसके होने पर । प्रकटै = प्रकाशित होती है । निधि = सम्पत्ति । मिटै = नष्ट होती है । परकी = पर द्रव्यों की ।

अर्थ—मुनिराज बारह तप तपते हैं । दस धर्मों को धारण करते हैं । मुनियों के साथ में या अकेले ही विहार करते हैं तथा कभी भी संसार के सुखों को नहीं चाहते हैं । इस प्रकार सकल संयम चारित्र हैं । अब

स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं, जिनके उदित होते ही आत्मा की निधि प्रकट होती है और परवस्तुओं से प्रवृत्ति हट जाती है।

प्रश्न १—तप किसे कहते हैं ? भेद सहित बताइए।

उत्तर—इच्छाओं के निरोध को तप कहते हैं।

तप के २ भेद हैं—(१) अन्तरंग और (२) बहिरंग।

प्रश्न २—अन्तरंग तप किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) जो किसी को दिखाने में नहीं आता है, वह अन्तरंग तप कहलाता है। इसके ६ भेद हैं।

(२) अन्तरंग यानी स्वात्मासे जिसका सम्बन्ध है, ऐसी इच्छा निरोध तप अन्तरंग तप कहलाता है।

प्रश्न ३—बहिरंग तप एवं उसके भेद बताइए ?

उत्तर—जो तप सबको दिखानेवाला, पर पदार्थों से सम्बन्ध रखनेवाला है तथा अन्य मतावलम्बी भी जिसे करते हैं, बहिरंग तप है। इसके भी ६ भेद हैं।

प्रश्न ४—स्वरूपाचरण-चारित्र का फल क्या है ?

उत्तर—स्वरूपाचरण चारित्र के होते ही पर पदार्थों से बुद्धि हट जाती है और रत्नत्रय निधि प्रकट हो जाती है।

प्रश्न ५—दस धर्मों के नाम व स्वरूप बताइए ?

उत्तर—(१) उत्तम क्षमा—क्रोध नहीं करना।
(२) उत्तम मार्दव—मान नहीं करना।
(३) उत्तम आर्जव—मायाचारी नहीं करना।
(४) उत्तम शौच—लोभ नहीं करना।
(५) उत्तम सत्य—झूठ नहीं बोलना।
(६) उत्तम संयम—पाँच इन्द्रिय और मन को वश में करना एवं छह काय के जीवों की रक्षा करना।
(७) उत्तम तप—इच्छाओं का निरोध करना।
(८) उत्तम त्याग—परवस्तु में ममत्व छोड़ना या चार प्रकार का दान देना।
(९) उत्तम आकिंचन्य—कोई परवस्तु मेरी नहीं, मैं किसी का नहीं।
(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य—शीलव्रत को शक्ति अनुसार धारण करना।

प्रश्न ६—रत्नत्रय किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं।

प्रश्न ७—मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो ५ महाव्रत ५ समिति का पालन करते हैं।

५ इन्द्रियों को जीतते हैं।

६ आवश्यकों का नित्य पालन करते हैं एवं ७ शेष गुणों के धारक हैं, इस प्रकार २८ मूलगुणों के धारी आत्मा को मुनि कहते हैं।

प्रश्न ८—मुनि के पर्यायवाची नाम बताइए ?

उत्तर—(१) मुनि—आत्मा का मनन करे वह मुनि। मौन रहे सो मुनि। मति आदि पाँच ज्ञानधारी मुनि। रत्नत्रय की सिद्धि करे सो मुनि।

(२) श्रमण—आत्मा में श्रम करने से श्रमण।

(३) संयत—इन्द्रियों के संयम से संयत।

(४) ऋषि—कर्मों को भंग करने से ऋषि।

(५) महर्षि—महान ऋद्धियों को प्राप्त करने से महर्षि।

(६) यति—मुक्ति में यत्न करने से यति।

(७) अनगार—अनियत स्थान में रहने से अनगार।

(८) वीतराग—राग रहित होने से वीतराग।

(९) पूज्य—तीन लोक के जीवों से वन्दनीय होने से पूज्यादि मुनियों के गुणों की अपेक्षा अनेक नाम हैं।

प्रश्न ९—मुनिराज निरन्तर क्या चिन्तन करते हैं ?

उत्तर—मुनिराज निरन्तर संसार, शरीर और भोगों की असारता का चिन्तन करते हैं।

प्रश्न १०—संयम किसे कहते हैं एवं इसके भेद बताइए ?

उत्तर—पाँच इन्द्रिय और मन को सम्यक् प्रकार से वश में करना संयम है। इसके दो भेद हैं—(१) प्राणी संयम और (२) इन्द्रिय संयम।

प्रश्न ११—स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्म स्वरूप में लीन होना स्वरूपाचरणाचरित्र है।

प्रश्न १२—अपनी निधि क्या है ?

उत्तर—पूर्ण रत्नत्रय की प्राप्ति ही आत्मा की अपनी निधि है ।

जिन परम पैनी सुबुद्धि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादि तै, निजभाव को न्यारा किया ।।
निज माँहि निज के हेतु निज कर, आप में आपै गह्यो ।
गुण गुणी ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रह्यो ।।८।।

शब्दार्थ—परम = अत्यन्त । पैनी = तेज धार वाली । सुबुधि = सम्यक्ज्ञान । छैनी = कटन्नी । भेदिया = अलग-अलग कर दिया । वरणादि = वर्ण आदि पुद्गल के गुण । रागादि = भाव कर्म । न्यारा = जुदा । निज माँहि = अपने में । निज के हेतु = अपने लिये । निज कर = अपने द्वारा । आपको = अपने को । आपै = स्वयमेव । गह्यो = ग्रहण करता है । गुणी = गुणवाला । ज्ञाता = आत्मा । ज्ञान = चेतना शक्ति । ज्ञेय = पदार्थ । मंझार = भीतर ।

अर्थ—जिन्होंने अत्यन्त तेज सम्यग्ज्ञानरूपी छैनी को डालकर अंतरंग में भेद कर आत्मा के असली स्वरूप को वर्णादि और रागादि भावों से अलग कर लिया है । अतएव जो अपने आत्मा में अपने आत्मा के लिये, अपने द्वारा आत्मा को अपने-आप ग्रहण करते हैं । उनके गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इनके भीतर थोड़ा भी अन्तर नहीं रह जाता है ।

प्रश्न १—आत्मा के गुण क्या हैं ?

उत्तर—ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, चारित्र आदि आत्मा के अनन्तगुण हैं ।

प्रश्न २—गुणी कौन है ?

उत्तर—जिसमें ये गुण पाये जाते हैं, ऐसी आत्मा गुणी है ।

प्रश्न ३—ज्ञाता कौन है ?

उत्तर—जाननेवाला आत्म-ज्ञाता है ।

प्रश्न ४—ज्ञेय कौन है ?

उत्तर—पदार्थ ज्ञेय है ।

प्रश्न ५—ज्ञान क्या है ?

उत्तर—ज्ञान आत्मा की चेतना शक्ति है ।

स्वरूपाचरण चारित्र

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को, न विकल्प वच भेद न जहाँ ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दशा ।
प्रगटी जहाँ दृग ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ।।९।।

शब्दार्थ—जहँ = स्वरूपाचरण चारित्र में । ध्यान = चिन्तवन । ध्याता = ध्यान करनेवाला । ध्येय = जिसका चिन्तवन किया जाय । विकल्प = भेद । चिद्भाव = आत्मा का स्वभाव । चिदेश = आत्मा । चेतना = उपयोग । अभिन्न = भेद रहित । अखिन्न = बाधा रहित । निश्चल = अटल । तीनधा = तीन प्रकार । एकै = एक रस । लसा = शोभायमान होते हैं । वच = वचन ।

अर्थ—जिस स्वरूपाचरण चारित्र में ध्यान, ध्याता, ध्येय का अन्तर नहीं रहता है, जहाँ वचन का भेद नहीं होता । वहाँ पर तो आत्मा का स्वभाव ही कर्म, आत्मा ही कर्त्ता और चेतना ही क्रिया हो जाती है । ये तीनों कर्त्ता, कर्म, क्रिया भेद रहित, परस्पर बाधाहीन एक हो जाते हैं । जहाँ शुद्धोपयोग की निश्चल दशा प्रकट होती है, वहाँ पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—ये एक रूप से शोभायमान होते हैं ।

प्रश्न १—ध्यान किसे कहते हैं ।

उत्तर— एक को अग्र करके चिन्ताओं का निरोध करना ध्यान है ।

प्रश्न २—ध्याता किसे कहते हैं ?

उत्तर—ध्यान करनेवाली आत्मा ध्याता है ।

प्रश्न ३—ध्येय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसका ध्यान किया जाता है, वह ध्येय है ।

प्रश्न ४—ध्यान का फल क्या है ?

उत्तर—ध्यान का फल निर्जरा है ।

प्रश्न ५—ध्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) आर्त्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३) धर्म्यध्यान, (४) शुक्लध्यान । ये ४ भेद ध्यान के जानने चाहिए ।

●

परमाण नय निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै ।
दृग-ज्ञान सुख-बलमय सदा, नहिं आनभाव जु मो विखैं ।।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं ।
चितपिंड चंड अखंड सुगुण, करंड च्युत पुनि कलनितैं ।।१०।।

शब्दार्थ—परमाण = सम्यग्ज्ञान । नय = श्रुत, का एकदेश । निक्षेप = न्यास या ज्ञेय वस्तु । उद्योत = प्रकाश । अनुभव = उपयोग । आन = अन्य । मो विखैं = मुझमें । साध्य = साधने योग्य, साधना करनेवाला । अबाधक = बाधा रहित । चितपिण्ड = चेतना रूप । चंड = प्रतापी । अखंड = भेद रहित । सुगुण करंड = उत्तम गुणों का पिटारा । च्युत = रहित । कलनितैं = पापों से ।

अर्थ—स्वरूपाचरणचारित्र के समय मुनियों के प्रमाण, नय और निक्षेपों का प्रकाश अनुभव में नहीं दिखता है, किन्तु ऐसा विचार होता है कि मैं अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य रूप हूँ । अन्य रागद्वेष आदि भाव मुझमें नहीं हैं । मैं साध्य हूँ, मैं साधक हूँ, मैं कर्म और उनके फलों से बाधा रहित हूँ । चैतन्य पिण्ड हूँ, तेजस्वी हूँ, टुकड़े रहित हूँ और उत्तमोत्तम गुणों का खजाना हूँ । पापों या कर्मों से रहित हूँ ।

प्रश्न १—प्रमाण किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के सर्वांशों को जाननेवाला ज्ञान प्रमाण कहलाता है ।

प्रश्न २—नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के एकदेश को जाननेवाला ज्ञान नय कहलाता है ।

प्रश्न ३—साध्य क्या है ?

उत्तर—रत्नत्रय की एकता साध्य है ।

प्रश्न ४—साधक कौन है ?

उत्तर—संसारी जीव साधक है ।

प्रश्न ५—स्वरूपाचरणचारित्र में साध्य-साधक बाधकादि भेद हैं या नहीं ?

उत्तर—स्वरूपाचरण चारित्र में आत्मा स्वयं ही साध्य है, स्वयं ही साधक है । अभेद अवस्था की प्राप्ति यहाँ होती है ।

प्रश्न ६—अनन्त चतुष्टय कौन से हैं ?

उत्तर—(१) अनन्त दर्शन, (२) अनन्त ज्ञान, (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य ।

अरहन्त अवस्था

यो चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यो ।
सो इन्द्र-नाग-नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहिं कह्यो ।।
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, च उघाति विधि कानन दह्यो ।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो ।।११।।

शब्दार्थ—चिन्त्य = चिन्तवन । अकथ = अवर्णनीय । तब ही = स्वरूपाचरणचारित्र के प्रकट हो जाने पर । शुकलध्यानाग्नि = शुक्लध्यानरूपी अग्नि । चउघाती विधि = चार प्रकार के घातिया कर्म । कानन = जंगल । दह्यो = जला देते हैं । लख्यो = जान लेते हैं । केवलज्ञान = सर्वोत्कृष्ट ज्ञान । भविलोक = भव्य जीव । शिवमग = मोक्षमार्ग । कह्यो = कहते हैं ।

अर्थ—इस प्रकार चिन्तवन करके आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाने पर उन मुनिराजों को जो अकथनीय आनन्द प्राप्त होता है वह आनन्द इन्द्र, नरेन्द्र, चक्रवर्ती और अहमिन्द्र को नहीं कहा गया है ।

उस स्वरूपाचरणचारित्र में प्रकट होने पर ही जब मुनिराज शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा चार घातिया कर्मरूपी जंगल को जला देते हैं तभी केवलज्ञान के द्वारा तीन लोकों के अनन्तानन्तपदार्थों के गुण पर्यायों को जानते हैं और संसार के भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं ।

प्रश्न १—अरहन्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—चार घातियाँ कर्मों से रहित, मोक्षमार्ग दर्शक, केवली भगवान को अरहन्त कहते हैं ।

प्रश्न २—घातिया कर्मों के नाम बताओ ?

उत्तर—(१) ज्ञानावरणी, (२) दर्शनावरणी, (३) मोहनीय और (४) अन्तराय ।

प्रश्न ३—शुक्लध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अत्यन्त निर्मल और वीतरागतापूर्ण ध्यान को शुक्लध्यान कहते हैं ।

सिद्ध स्वरूप

पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिनमाँहि अष्टम भू बसैं ।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ।।
संसार खार अपार पारा-वारि, तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ।।१२।।

शब्दार्थ—पुनि = फिर । घाति = नष्ट करके । शेष = बाकी । अघाति विधि = अघातिया कर्म । छिनमाँहि = क्षणभर में । अष्टम भू = मोक्ष । वसु = आठ । विनसै = नष्ट होने से । सुगुण = उत्तम गुण । लसै = शोभायमान होते हैं । खार = दुःखदायक । पारावार = समुद्र । तरि = पार कर । तीरहिं = किनारे पर । अविकार = विकार रहित । अकल = शरीर रहित । अरूप = रूप रहित । शुचि = शुद्ध (अकलंक) । चिद्रूप = चैतन्य स्वरूप । अविनाशी = नाश रहित ।

अर्थ—अरहन्त हो जाने के बाद बाकी बचे हुए अघातिया कर्मों का नाश करके थोड़े समय में ही मोक्ष में निवास करते हैं । वहाँ पर सिद्धों के आठ कर्मों के विनाश से सम्यक्त्व आदि गुण प्रकट होकर शोभायमान होने लगते हैं । ऐसे जीव संसाररूपी खारे अगाध समुद्र को पार कर दूसरे किनारे को प्राप्त हो जाते हैं, और विकार रहित, शरीर रहित, रूप रहित, निर्दोष चैतन्यस्वरूप नित्य हो जाते हैं ।

प्रश्न १—अघातिया कर्म कितने व कौन से हैं ?

उत्तर—अघातिया कर्म ४ हैं—(१) वेदनीय, (२) आयु, (३) नाम और (४) गोत्र ।

प्रश्न २—अष्टम भूमि किसे कहते हैं ? वह कहाँ है ?

उत्तर—जहाँ सिद्ध भगवान रहते हैं उस भूमि को अष्टम भूमि कहते हैं या सिद्धालय मोक्ष भी कहते हैं । यह स्थान लोक के अग्रभाग में है ।

प्रश्न ३—सिद्ध भगवान किनको कहते हैं ?

उत्तर—अष्ट कर्ममल रहित, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य एवं सम्यक्त्वादि आठ गुणों से रहित परमात्मा को सिद्ध भगवान कहते हैं ।

प्रश्न ४—सिद्धों के किस कर्म के नाश से कौन-सा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर—मोहनीय के नाश से सम्यक्त्व गुण प्रकट होता है।
दर्शनावरणी के नाश से दर्शन गुण प्रकट होता है।
ज्ञानावरणी के नाश से ज्ञान गुण प्रकट होता है।
गोत्र कर्म के नाश से अगुरुलघुत्व गुण प्रकट होता है।
नाम कर्म के नाश से सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होता है।
आयु कर्म के नाश से अवगाहनत्व गुण प्रकट होता है।
वेदनीय कर्म के नाश से अव्याबाधत्व गुण प्रकट होता है।
अन्तराय कर्म के नाश से वीर्यत्व गुण प्रकट होता है।

मोक्ष पर्याय की महिमा

निजमाँहि लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परणये।।
धनि धन्य हैं वे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच, प्रकार तजि कर सुख लिया।।१३।।

शब्दार्थ—निजमाँहि = सिद्ध भगवान में। प्रतिबिम्बित थये = चमकने लगते हैं। रहि हैं = रहेंगे। यथा = जैसे। तथा = वैसे। कारज = कार्य। पंच प्रकार = पाँच परिवर्तन रूप। तजि = छोड़। वर = श्रेष्ठ।

अर्थ—उन सिद्ध भगवान की आत्मा में लोक और अलोक के अनन्त पदार्थ, गुण पर्यायों सहित झलकने लगते हैं। वे जैसे मोक्ष गये हैं वैसे ही अनन्त-अनन्त काल तक वहाँ ही रहेंगे। जिन जीवों ने मनुष्य-जन्म पाकर मुनि-पद की प्राप्ति-रूप काम किया है वे जीव बड़े भाग्यवान हैं और ऐसे ही जीवों ने अनादिकाल से चले आये पाँच परिवर्तन-रूप संसार परिभ्रमण को त्याग कर उत्तम सुख पाया है।

प्रश्न १—सिद्ध भगवान के ज्ञान की विशेषता बताइए?

उत्तर—सिद्ध भगवान का आत्मा में लोक-अलोक के अनन्तानन्त पदार्थ अनन्त गुण पर्यायों सहित एकसाथ झलकने लगता है।

प्रश्न २—सिद्धालय में सिद्ध भगवान कितने समय तक रहते हैं?

उत्तर—अनन्तानन्त काल तक मोक्ष में रहते हैं। वे कभी भी पुनः लौटकर नहीं आते हैं।

प्रश्न ३—संसार में धन्य जीवन किसका है ?

उत्तर—जिस जीव ने मानव जीवन पाकर मुक्ति मार्ग के साधक मुनि पद को प्राप्त किया, संसार में उसी का जीवन धन्य है।

प्रश्न ४—पंचपरावर्तन रूप संसार कौन-सा है ?

उत्तर—(१) द्रव्य, (२) क्षेत्र, (३) काल, (४) भाव और (५) भव ये पंच परावर्तन रूप संसार हैं।

प्रश्न ५—इस संसार का नाश कौन कर सकता है ?

उत्तर—जो मानव जीवन पाकर मुनि-पद को प्राप्त कर सफल होता है वही पंचपरावर्तन रूप संसार का नाश करता है। मुनि बने बिना कभी मुक्ति नहीं मिलेगी।

रत्नत्रय का फल एवं आत्महित की शिक्षा

मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन, सुजश जल जगमल हरैं।।
इमि जानि, आलस हानि साहस, ठाण यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहै, तबलों झटिति निजहित करो।।१४।।

शब्दार्थ—मुख्योपचार = निश्चय व्यवहार। दुभेद = दो प्रकार। बड़भागि = भाग्यशाली। सुजश जल = (सुयश) कीर्तिरूपी जल। जगमल = संसार का मैल। इमि = इस प्रकार। जानि = जानकर। आलस = प्रमाद। हानि = नष्ट कर। साहस = धैर्य। ठानि = करके। सिख = शिक्षा। आदरो = धारण करो। जबलों = जब तक। जरा = बुढ़ापा। गहै = घेरता है। झटिति = शीघ्र। निजहित = अपना भला।

अर्थ—जो भाग्यवान पुरुष इस तरह निश्चय और व्यवहार रूप दो प्रकार के रत्नत्रय को धारण करते हैं और धारण करेंगे वे मोक्ष पाते हैं तथा पावेंगे। उनका कीर्तिरूपी जल संसाररूपी मैल को नष्ट करता है। इस प्रकार जानकर आलस्य को नष्ट कर साहस करके इस शिक्षा को ग्रहण करो कि जब तक रोग और बुढ़ापा नहीं घेर लेता है तब तक शीघ्र ही अपना भला कर लेना चाहिये।

प्रश्न १—जो भाग्यवान रत्नत्रय धारण करता है उसकी दशा बताओ ?

उत्तर—"ते शिव लहें तिन सुजश जल जगमल हरैं" जो भाग्यवान निश्चय व्यवहार रूप रत्नत्रय को धारण करते हैं वे मुक्ति को प्राप्त करते हैं तथा उनका कीर्तिरूपी जल संसार के मल का क्षय करता है।

प्रश्न २—संसार में स्वहित कब तक कर लेना चाहिये ?

उत्तर—"जबलों न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करो।"

अन्तिम उपदेश

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये।।
कहा रच्यों पर पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुःख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै।।१५।।

शब्दार्थ—राग आग = रागरूपी अग्नि। दहै = जलती है। समामृत = समतारूपी अमृत। सेइये = सेवन करना चाहिये। चिर = लम्बे समय। भजे = सेवन किया है। निजपद = आत्मस्वरूप। बेइये = पहचानना चाहिये। पर पद = परवस्तु। कहा = क्यों। रच्यो = लीन है। रचि = लगाकर। दाव = अवसर, मौका।

अर्थ—यह रागरूपी आग हमेशा जलती रहती है, इसलिये समतारूपी अमृत का सेवन करना चाहिये। विषय-कषायों का अनादिकाल से सेवन किया है अब उनको छोड़कर अपने स्वरूप को पहचानना चाहिये। दूसरी वस्तुओं में लीन क्यों होता है ? यह तेरा पद नहीं है। दुःख क्यों सहता है ? हे दौलतराम ! अपने स्वरूप में लीन होकर सुखी बनो, यह मौका हाथ से मत जाने दो।

प्रश्न १—रागरूपी आग को किससे शांत करना चाहिये ?

उत्तर—"समामृत सेइये" समतारूपी अमृत का सेवन करने से रागरूपी आग शान्त हो जाती है।

प्रश्न २—इस जीव ने अनादिकाल से क्या किया ?

उत्तर—"चिर भजे विषय कषाय" इस जीवन ने अनादिकाल से विषय कषायों का सेवन किया।

प्रश्न ३--अब मानव-पर्याय पाकर क्या करना चाहिये ?

उत्तर—"अब तो त्याग निजपद बेइये" अब विषय-कषायों का त्याग करके अपने निजस्वरूप को पहचानना चाहिए।

प्रश्न ४—यदि मानव जीवनरूपी मौका चूक गया तो ?

उत्तर—"दाव मत चूको यहै" यह मौका चूकने के बाद फिर मिलना बहुत कठिन है। अतः यह दाव कभी चूकना नहीं!

ग्रन्थ रचना का समय

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख ।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ।।१।।
लघु-धी तथा प्रमाद ते, शब्द अर्थ की भूल ।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ।।२।।

अर्थ—मैंने (दौलतराम जी) पण्डित बुधजनजी के छहढाला का सहारा लेकर विक्रम सम्वत् १८९१ के वैशाख सुदी तृतीया (अक्षय तृतीया) को यह छहढाला ग्रन्थ बनाया है। मेरी अल्पबुद्धि और प्रमाद से इस ग्रन्थ में कहीं शब्द और अर्थ की गलती रह गई हो तो बुद्धिमान उसे सुधार कर पढ़ें, जिससे इस संसार से पार होने में समर्थ हो सकें।

●

छहढ़ाला

[कविवर दौलतरामजी]

सोरठा

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकै ।।१।।

पहली ढाल

चौपाई छन्द

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त ।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणाधार ।।२।।
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण ।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ।।३।।
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार ।।४।।
एक श्वास में अठदश बार, जन्म्यो मर्‍यो भर्‍यो दुखभार ।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ।।५।।
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रस तणी ।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‍यो सही बहुपीर ।।६।।
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो ।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ।।७।।
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन ।
छेदन भेदन भूख पियास, भार वहन हिम आतप त्रास ।।८।।
वध बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभतैं जात न भनैं ।
अतिसंक्लेश भाव तैं मर्‍यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‍यो ।।९।।
तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो ।
तहाँ राध-शोणितवाहिनी, कृमिकुलकलित देहदाहिनी ।।१०।।

सेमरतरु जुत दल असिपत्र, असि ज्यों देह विदारें तत्र ।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ।।११।।
तिल-तिल करें देह के खण्ड, असुर भिड़ावें दुष्ट प्रचण्ड ।
सिन्धुनीरतें प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ।।१२।।
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय ।
ये दुःख बहुसागरलों सहै, करम जोगतें नरगति लहै ।।१३।।
जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतें पाई त्रास ।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ।।१४।।
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो ।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे आपनो ।।१५।।
कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै ।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो ।।१६।।
जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय ।
तँहतें चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ।।१७।।

दूसरी ढाल

पद्धरि छन्द

ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चर्ण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म मर्ण ।
तातें इनको तजिये सुजान, तिन सुन संक्षेप कहूँ बखान ।।१।।
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिनमाहिं विपर्ययत्व ।
चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरत चिन मूरत अनूप ।।२।।
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतें न्यारी है जीव चाल ।
ताको न जान विपरीत मान, करि करें देह में निज पिछान ।।३।।
मैं सुखी दुखी मैं रङ्क राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव ।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ।।४।।
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नसत आपको नाश मान ।
रागादि प्रगट जे दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन ।।५।।

शुभ अशुभ बंध के फल मँझार, रति अरति करै निज पद विसार।
आतम हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान ।।६।

रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय ।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ।।७।।

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त ।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ।।८।।

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव ।
अंतर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अंबर तैं सनेह ।।९।।

धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपल नाव ।
जे रागद्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादि जुत चिह्न चीन ।।१०।।

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेव ।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ।।११।।

जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहै अशर्म ।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ।।१२।।

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त ।
कपिलादिरचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ।।१३।।

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविधविध देह दाह ।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन ।।१४।।

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग ।
जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग ।।१५।।

तीसरी ढाल

नरेन्द्र छन्द

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिये ।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरण शिव, मग सो दुविध विचारो ।
जो सत्यारथ-रूप-सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ।।१।।

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है ।
आप रूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है ।।
आप रूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई ।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई ।।२।।

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंधरु संवर जानो ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो ।।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो ।
तिनको सुन सामान्य विशेषै, दिढ़ प्रतीत उर आनो ।।३।।

बहिरातम अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है ।
देह जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है ।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी ।
द्विविध संग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ।।४।।

मध्यम अन्तर आतम है जे, देशव्रती अनगारी ।
जघन कहे अविरतसमदृष्टि, तीनों शिवमगचारी ।।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी ।
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी ।।५।।

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल, वर्जित सिद्ध महंता ।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै ।
परमातम को ध्यान निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै ।।६।।

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं ।
पुद्गल, पंच वरन रस गंध-दु, फरस वसु जाके हैं ।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी ।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी ।।७।।

सकल द्रव्य को बास जास में, सो आकाश पिछानो ।
नियत वर्तना निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो ।।
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा ।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद-सहित उपयोगा ।।८।।
ये ही आतम के दुखकारण, तातैं इनको तजिये ।
जीव प्रदेश बँधे विधिसों सो, बंधन कबहुँ न सजिये ।।
शम-दमतें जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये ।
तप बलतें विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ।।९।।
सकलकर्म तें रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी ।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ।।
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो ।
येही मान समकित को कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो ।।१०।।
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो ।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो ।।
अष्ट अंग अरु दोष पच्चीसों, तिन संक्षेपहु कहिये ।
बिन जाने तैं दोष गुणन को, कैसे तजिये गहिये ।।११।।
जिन वच में शंका न धार वृष, भवसुख वांछा भानै ।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ।।
निजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निजधर्म बढ़ावै ।
कामादिक कर वृषते चिगते, निजपर को सु दिढ़ावै ।।१२।।
धर्मीसों गौ बच्छ प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै ।
इन गुणतें विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै ।।
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै ।
मद न रूपको मद न ज्ञानको, धन बल को मद भानै ।।१३।।
तप को मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै ।
मद धारै तो यही दोष वसु, समकित को मल ठानै ।।
कुगुरु-कुदेव-कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है ।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करै है ।।१४।।

दोष रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यक् दरश सजे हैं ।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं ।।
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जलतें भिन्न कमल है ।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ।।१५।।

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षंढ नारी ।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक्धारी ।।
तीन लोक तिहुँकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी ।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ।।१६।।

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा ।
सम्यक्ता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ।।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै ।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै ।।१७।।

चौथी ढाल

सम्यक्श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान ।
स्वपर अर्थ बहु धर्म जुत, जो प्रगटावन भान ।।
सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधो ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहूँ में भेद अबाधो ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई ।
युगपत होते हूँ प्रकाश, दीपकतें होई ।।१।।

तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माहीं ।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतें उपजाहीं ।।
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देश-प्रतच्छा ।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानैं जिय स्वच्छा ।।२।।

सकल द्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता ।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता ।।
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारन ।
इहि परमामृत जन्म-जरा-मृत-रोग-निवारन ।।३।।

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानी के छिनमाँहि, त्रिगुप्तितें सहज टरैं ते ।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो ।।४।।
तातें जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजे ।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजे ।।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवो जिनवानी ।
इह विध गये न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी ।।५।।
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै ।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ।।
तास ज्ञान को कारन, स्वपर विवेक बखानौ ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनौ ।।६।।
जे पूरब शिव गये, जाँहि अब आगे जै हैं ।
सो सब महिमा ज्ञान तनी, मुनिनाथ कहै हैं ।।
विषय चाह दव-दाह, जगत-जन अरनि दझावै ।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै ।।७।।
पुण्य-पाप-फलमाहिं, हरख बिलखौ मत भाई ।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनशैं थिर थाई ।।
लाख बात की बात यहै, निश्चय उर लाओ ।
तोरि सकल जग दंद-फंद, निज आतम ध्याओ ।।८।।
सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दिढ़ चारित लीजै ।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै ।।
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँघारै ।
पर वध-कार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै ।।९।।
जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता ।
निज वनिता बिन सकल, नारिसों रहै विरत्ता ।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरों राखै ।
दश दिश गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै ।।१०।।

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा ।
गमनागमन प्रमान ठान, अन सकल निवारा ।।
काहू की धन हानि, किसी जय हार न चिंतै ।
देय न सो उपदेश, होय अघ वनज कृषीतें ।।११।।

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै ।
असि धनु हल हिंसोपकरण, नहिं दे यश लाधै ।।
राग द्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजे ।
औरहु अनरथदंड हेतु, अघ तिन्हें न कीजे ।।१२।।

धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये ।
पर्व चतुष्टय माँहिं, पाप तजि प्रोषध धरिये ।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममतु निवारै ।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ।।१३।।

बारह व्रतके अतीचार, पन पन न लगावै ।
मरन समय संन्यास धार, तसु दोष नशावै ।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै ।
तहतैं चय नर-जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै ।।१४।।

पाँचवीं ढाल

सखी छन्द

मुनि सकलव्रती बडभागी, भव भोगनतैं वैरागी ।
वैराग्य उपावन माई, चिन्त्यो अनुप्रेक्षा भाई ।।१।।
इन चिन्तन समरस जागै, जिमि ज्वलन पवनके लागै ।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव सुख ठानै ।।२।।
जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी ।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ।।३।।
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ।।४।।

चहुँगति दुख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं ।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ।।५।।
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एकहि तेते ।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ।।६।।
जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला ।
त्यों प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ।।७।।
पल-रुधिर राध-मल-थैली, कीकस वसादितें मैली ।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किमि यारी ।।८।।
जो जोगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई ।
आस्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे ।।९।।
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना ।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ।।१०।।
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज-काज न सरना ।
तप करि जो कर्म खपावैं, सोई शिव सुख दरसावैं ।।११।।
किनहू न करै न धरै को, षट्द्रव्य मयी न हरै को ।
सो लोकमाँहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ।।१२।।
अन्तिम ग्रीवक लों की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद ।
पर सम्यक्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ।।१३।।
जे भाव मोहतें न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे ।
सो धर्म जबै जिय धारै, तबही सुख अचल निहारैं ।।१४।।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये ।
ताको सुनिये भवि प्राणी, अपनी अनुभूति पिछानी ।।१५।।

छठीं ढाल

हरिगीता छन्द

षट्काय जीव न हननतैं, सबविधि दरब हिंसा टरी ।
रागादि भाव निवारितैं, हिंसा न भावित अवतरी ।।
जिनके न लेश मृषा न जल मृण हू बिना दीयो गहैं ।
अठदश-सहस विध शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ।।१।।

अन्तर चतुर्दश भेद बाहर, संग दशधा तैं टलैं ।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं ।।
जग सुहित कर सब अहित हर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं ।
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन, मुख-चन्द्रतैं अमृत झरैं ।।२।।

छ्यालीस दोष विना सुकुल श्रावकतने घर अशन को ।
ले तप बढ़ावन हेतु नहिं तन, पोषते तजि रसन को ।।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं ।
निर्जन्तु थान विलोकि तन, मल मूत्र श्लेषम परिहरैं ।।३।।

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच, काय आतम ध्यावते ।
तिन सुथिरमुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते ।।
रस रूप गन्ध तथा फरस अरु, शब्द सुह असुहावने ।
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रिय जयन पद पावने ।।४।।

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को ।
नित करैं श्रुतिरति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को ।।
जिनके न न्हौन न दन्तधावन, लेश अंबर आवरन ।
भूमाहिं पिछली रयन में कछु, शयन एकासन करन ।।५।।

इक बार दिन में ले अहार, खड़े अलप निजपान में ।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निजध्यान में ।।
अरि मित्र महल मसान कंचन, काँच निन्दन थुतिकरन ।
अर्घावतारन असि-प्रहारन, में सदा समता धरन ।।६।।

तप तपें द्वादश धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा ।
मुनि साथ में या एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा ।।
यों है सकलसंयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरण अब ।
जिस होत प्रगटे आपनी निधि, मिटे परकी प्रवृत्ति सब ।।७।।

जिन परमपैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादि तें, निजभाव को न्यारा किया ।।
निज माहिं निज के हेतु निज कर, आपमें आपै गह्यो ।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रह्यो ।।८।।

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को, न विकल्प वच भेद न जहाँ ।
चिद्‌भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दसा ।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा ।।९।।

परमाण नय निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै ।
दृग ज्ञान सुख-बल-मय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखैं ।।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं ।
चितपिंड चंड अखंड सुगुण-करंड च्युत पुनि कलनितैं ।।१०।।

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो ।।
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो ।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो ।।११।।

पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिनमाँहि अष्टम भू बसे ।
वसु कर्म विनसे सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसे ।।
संसार खार अपार पारावार, तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ।।१२।।

निजमाँहि लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये ।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परणये ।।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादि भ्रमण पंच-प्रकार तजि वर सुख लिया ।।१३।।

मुख्योपचार दुभेद यों, बड़-भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन, सुजश-जल जगमल हरैं ।।
इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो ।
जबलों न रोग जरा गहै, तबलों झटिति निजहित करो ।।१४।।

यह राग आग दहै सदा, तातें समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये ।
कहा रच्यों पर-पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुःख सहै ।
अब 'दौल' ! होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै ।।१५।।

ग्रन्थ रचना का समय

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख ।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ।।१।।
लघु-धी तथा प्रमाद तें, शब्द अर्थ की भूल ।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ।।२।।

●